द्वितीय सेमेस्टर
Second Semester

मुद्रा और बैंकिंग — **एम.ए.ई.सी. -506**

Money and Banking — **M.A.E.C. -506**

विषय-सूची

खण्ड – 1 मुद्रा:- परिचय, मुद्रा स्फीति एवं मौद्रिक नीति	**पृष्ठ संख्या**
(Money:- Introduction, Inflation and Monetary Policy)	**1-48**
इकाई 1- मुद्रा का परिचय	1-10
(Introduction of Money)	
इकाई 2- मुद्रा स्फीति:- प्रकार, प्रभाव एवं नियंत्रण	11-23
(Inflation:- Types, Effects and Control)	
इकाई 3- मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी	24-29
(Inflation and Unemployment)	
इकाई 4- मौद्रिक नीति के यंत्र	30-41
(Tools of Monetary Policy)	
इकाई 5- विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका	42-48
(Role of Monetary Policy in Developing Countries)	
खण्ड – 2 मुद्रा माँग सिद्धान्त	**पृष्ठ संख्या**
(Theories of Demand for Money)	**49-103**
इकाई 6- मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त	49-60
(Quantity Theory of Money)	
इकाई 7- मुद्रा परिमाण का आधुनिक सिद्धान्त	61-67
(Modern Quantity Theory of Money)	
इकाई 8- कीन्स का मुद्रा माँग तथा ब्याज दर का सिद्धान्त	68-76
(Keynesian Theory of Demand for Money and Rate of Interest)	
इकाई 9- मुद्रा की माँग का केन्सोत्तर सिद्धान्त	77-87
(Post-Keynesian Theory of Demand for Money)	
इकाई 10- IS-LM वक्र प्रारूप	88-103
(IS-LM Curve Model)	

खण्ड – 3 बैंकिग एवं मुद्रा पूर्ति (Banking and Money Supply)	पृष्ठ संख्या 104-146
इकाई 11- केन्द्रीय बैंक (Central Bank)	104-114
इकाई 12- वाणिज्यिक बैंकिग (Commercial Banking)	115-125
इकाई 13- साख:- नियन्त्रण एवं सृजन (Credit:- Creation and Control)	126-138
इकाई 14- मुद्रा पूर्ति के अवयव (Components of Money Supply)	139-146

Suggested Readings:

1. Ackley, G. (1976) ***Macroeconomics: Theory and Policy***, Macmillan Publishing Company, New York
2. Agarwal, V. (2010) ***Macroeconomics: theory and Policy***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
3. Ahuja, H.L. (2012) ***Macro Economics, Theory and policy***, S. Chand and Company Ltd., New Delhi
4. Branson, W. A. (1989) ***Macroeconomic Theory and Policy***, (3rd Edition), Harper and Row, New York
5. Case, Karl E. & Ray C. Fair (2007) ***Principles of Economics***, Pearson Education, Inc.,8th edition.
6. Dornbusch, R. and F. Stanley (1997) ***Macroeconomics***, McGraw Hill, Inc., New York
7. Errol D'souza, (2008) ***Macroeconomics***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi
8. Hall, R. E. and J. B. Taylor (1986) ***Macroeconomics***, W. W., Norton, New York
9. Jha, R. (1991) ***Contemporary Macroeconomic Theory and Policy***, Wiley Eastern Ltd., New Delhi.
10. Mankiw, N.G. (2013) ***Principles of Macroeconomics***, Cengage Learning India (Pvt.) Ltd., New Delhi.
11. Romer, D. L. (1996) ***Advanced Macroeconomics***, McGraw Hill Company Ltd., New York.
12. Shapiro, E. (1996) ***Macroeconomics Analysis***, Galgotia Publications, New Delhi.
13. Sikdar, Shoumyen, ***Principles of Macroeconomics***, (2nd Edition) Oxford University Press, India

इकाई 1 : मुद्रा का परिचय
(UNIT 1 : INTRODUCTION OF MONEY)

1.1 प्रस्तावना
1.2. उद्देश्य
1.3 मुद्रा की प्रकृति
1.4 मुद्रा की सैद्धान्तिक और अनुभवसिद्ध परिभाषाएं
1.4.1 परम्परागत परिभाषा
1.4.2 फ्रीडमैन की परिभाषा
1.4.3 रेडक्लिफ की परिभाषा
1.4.4 गुर्ले शा की परिभाषा
1.4.5 पेसक-सेविंग की परिभाषा
1.5 मुद्रा के कार्य
1.5.1 प्राथमिक कार्य या मुख्य कार्य
1.5.2 सहायक कार्य
1.5.3 आकस्मिक कार्य
1.5.4 अन्य कार्य
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (INTRODUCTION)

इस इकाई में मुद्रा के विभिन्न पहलूओं पर विचार किया गया हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा (अर्थात् नोट, करेन्सी, रूपया इत्यादि नाम है) की क्या प्रकृति है को स्पष्ट किया गया है। इसके अन्तर्गत मुद्रा की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी विचारधाराएं शामिल है। साथ ही साथ मुद्रा के कार्यों के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है।

1.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ✓ मुद्रा की प्रकृति से अवगत हो सकेगें।
- ✓ मुद्रा की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषा से अवगत हो सकेगें।
- ✓ अर्थव्यवस्था में मुद्रा के कौन-कौन से कार्य है उनकी जानकारी होगी।

1.3 मुद्रा की प्रकृति (NATURE OF MONEY)

मुद्रा के अर्थ और प्रकृति के संबंध में बहुत मतभेद और भ्रान्ति चली आ रही है। जैसा कि **स्टोवस्की (Scitovsky)** ने लक्ष्य किया है, *''मुद्रा की धारणा को परिभाषित करना कठिन है, आंशिक रूप से तो इसलिए कि यह एक नहीं तीन कार्य करती है, जिनमें से प्रत्येक कार्य मुद्रात्व की कसौटी प्रदान करता है। ये कार्य हैः (1) लेखा की इकाई, (2) विनिमय का माध्यम, (3) मूल्य का संचय।''* यद्यपि स्कितोव्स्की (Stavisky) ने मुद्रात्व के कारण मुद्रा को परिभाषित करने की कठिनाई की ओर संकेत किया है तथापि उसने मुद्रा की व्यापक परिभाषा दी है।

प्रो. कॉलबार्न (Colborn) की परिभाषा के अनुसार *''मुद्रा, मूल्यांकन तथा भुगतान का माध्यम है; लेखा की इकाई के रूप में भी तथा विनिमय के सामान्यतः स्वीकार्य माध्यम के रूप में भी।''* कॉलबार्न की परिभाषा बहुत व्यापक है। उन्होंने इस परिभाषा में '**मूर्त मुद्रा**' जैसे-सोना, चेक, सिक्के, केरन्सी, नोट, बैंक ड्राफ्ट आदि को तो शामिल किया ही हैं, साथ ही '**अमूर्त मुद्रा**' को भी ले लिया है जो हमारे मूल्य, कीमत तथा योग्यता के विचारों की वाहिका है।

इस तरह की व्यापक परिभाषाएं देखकर सर **जॉन हिक्स (John Hicks)** ने कहा था, *''मुद्रा अपने कार्यों से परिभाषित होती है, जिस किसी वस्तु को मुद्रा की भांति प्रयोग किया जाए वही मुद्रा बन जाती है। मुद्रा वहीं है जो मुद्रा का कार्य करें।''* ये मुद्रा की कार्यात्मक परिभाषाएं हैं क्योकि ये मुद्रा को उसके कार्यों की दृष्टि से परिभाषित करती है।

कुछ अर्थशास्त्री मुद्रा को कानून की शब्दावली में परिभाषित करते है और कहते है, *''जिस किसी चीज को सरकार मुद्रा घोषित कर दे, वही मुद्रा है।''* इस तरह की मुद्रा को सामान्य रूप से सभी स्वीकार करते है और इसमें ऋण चुकाने की कानूनी शक्ति होती है। परन्तु हो सकता है कि लोग वैध मुद्रा स्वीकार न करें और उसके बदले में वस्तुएं तथा सेवायें बेचने को तैयार न हों। दूसरी ओर सम्भव है कि लोग ऐसी चीजों को मुद्रा के रूप में स्वीकार कर लें जिन्हें ऋण चुकाने के लिए कानूनी तौर पर मुद्रा नहीं कहा गया, परन्तु जो बहुत प्रचलित हों। इस तरह की चीजें, वाणिज्यिक बैंको द्वारा जारी किए गए चेक और नोट है। इस प्रकार, वैधता के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी बातें है जो कुछ चीजों को मुद्रा बनाती है।

1.4 मुद्रा की सैद्धान्तिक और अनुभवसिद्ध परिभाषाएं (THEORETICAL AND EMPIRICAL DEFINITIONS OF MONEY)

मुद्रा की परिभाषा के बारे में अर्थशास्त्री एकमत नहीं है, इसलिए **प्रो. जॉनसन** इस संबंध में चार मुख्य विचारधाराओं का उल्लेख करता है जिनकी पेसक और सेविंग के विचार के साथ नीचे विवेचना की गई है।

1.4.1 परम्परागत परिभाषा (CLASSICAL DEFINITION)

परम्परागत विचारधारा, जिसे **करेन्सी संप्रदाय** भी कहते है, के अनुसार, मुद्रा को करेन्सी और माँग जमा कहा गया है। **हिक्स** के अनुसार, मुद्रा की परम्परावादी परिभाषाएं उसके कार्यों के आधार पर की जाती हैं। *''कोई भी वस्तु जिसका मुद्रा की तरह प्रयोग किया जाता है मुद्रा हैं।''* इसका **सबसे महत्वपूर्ण कार्य विनिमय का माध्यम** के रूप में है। कीन्स ने परम्परागत विचारधारा का पालन करते हुए अपनी पुस्तक General Theory में नकदी और बैंको की माँग जमा को मुद्रा परिभाषित किया। **हिक्स** ने अपने **Critical Essays in Monetary Theory** में मुद्रा की प्रकृति के परम्परागत तिहरे वर्गीकरण को बताया हैः *''लेखा की इकाई, भुगतान करने का साधन और मूल्य के संचय के रूप में।''* बैंकिग संप्रदाय ने मुद्रा की परम्परागत परिभाषा को मनमानी इसकी आलोचना की। इसमें मुद्रा का अर्थ बहुत संकुचित है क्योकि अन्य परिसंपत्तियां भी है जो समानरूप से विनिमय का माध्यम स्वीकार की जाती है। इनमें वाणिज्यिक बैंको के समय जमा-पत्र, विनिमय बिल, आदि शामिल हैं। इन परिसंपत्तियों की उपेक्षा करके परम्परागत विचारधारा उनके प्रभाव से उनके वेग का विश्लेषण करने में समर्थ नहीं है। फिर, इनको मुद्रा की परिभाषा से निकालकर, केन्जवादी मुद्रा के ब्याज-लोच माँग फलन पर अधिक बल देते है। अनुभवसिद्ध तौर से उन्होंने ब्याज दर द्वारा उत्पादन और मुद्रा के स्टॅाक के बीच संबंध स्थापित किया। मुद्रा के परम्परावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नोट,सिक्के अर्थात करेन्सी तथा बैंकों में माँग जमा को शामिल किया जाता हैं।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी (सिक्के और नोट) + बैंकों में माँग जमा

Money Supply = Currency (Coins and Notes) + Demand Deposit

1.4.2 फ्रीडमैन की परिभाषा (DEFINITION OF FRIEDMAN)

प्रो. मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman), शिकागो स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स (Chicago School of Economics) के नोबेल पुरस्कार (Nobel Prize) विजेता थे। जिसके कारण फ्रीडमैन के इस विचारधारा को **शिकागो स्कूल दृष्टिकोण (Chicago School Approach)** के नाम से भी जाना जाता हैं। मुद्रा से **प्रो. मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman)** का अभिप्राय है, *''अक्षरशः वे सभी डालर जो लोग अपनी जेबों में लिए घूमते है, और वे सभी डालर जो माँग जमा और वाणिज्यिक बैंक के पास समय जमा के रूप में उनके बैंक खातों में है।''* अतः उसकी परिभाषा के अनुसार, मुद्रा *''करेन्सी और वाणिज्यिक बैंको की कुल समायोजित जमाओं का जोड़ है।''* सावधि जमा को नकद मुद्रा में बिना किसी हानि, असुविधा तथा विलम्ब के बदला जा सकता हैं इसलिए इस दृष्टिकोण के अनुसार

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी (सिक्के और नोट) + माँग जमा + सावधि जमा

Money Supply = Currency (Coins and Notes) + Demand Deposit + Time Deposit

यह मुद्रा की व्यावहारिक परिभाषा है, जिसका फ्रीडमैन और शर्वाटज चुने हुए 1929, 1935, 1950, 1955 और 1960 वर्षों के लिए अमरीका की मौद्रिक प्रवृत्तियों के अनुभवसिद्ध अध्ययन के लिए प्रयोग करते हैं। यह मुद्रा की संकुचित परिभाषा थी और वाणिज्यिक बैंको के दोनों माँग और समय जमाओं में समायोजन तथा समाज और वाणिज्यिक बैंको की बढ़ रही वित्तीय कृत्रिमता को ध्यान में रख कर रची गई थी। परन्तु फ्रीडमैन इस कृत्रिमता का एक सूचक भी स्थापित नहीं कर सका। इस समायोजन के साथ भी, नकद और जमा मुद्राओं की दीर्घकाल तक पूरी तरह से तुलना नहीं की जा सकी थी। फिर भी 1950, 1955 और 1960 के सहसंबंध प्रमाण ने मुद्रा को इस विस्तृत परिभाषा का सुझाव दियाः *''कोई परिसंपत्ति जो क्रय शक्ति के अस्थाई निवास के रूप में क्षमता रखती हो।''*

इस प्रकार फ्रीडमैन मुद्रा की दो प्रकार की परिभाषाएं देता है। एक सैद्धान्तिक आधार पर और दूसरी अनुभवसिद्ध आधार पर। फ्रीडमैन मुद्रा की अपनी परिभाषा में दृढ़ नहीं है और विस्तृत दृष्टिकोण रखते है जिसमें बैंक जमा, गैर बैंक जमा और कई अन्य प्रकार की परिसंपत्तियां शामिल होती है, जिनके द्वारा मौद्रिक अधिकारी रोजगार, कीमतों और आय के भावी-स्तर या किसी अन्य महत्वपूर्ण समष्टि चर को प्रभावित करता है।

1.4.3 रेडक्लिफ की परिभाषा (DEFINITION OF REDCLIFF)

रेडक्लिफ समिति ने मुद्रा को ''नोट + बैंक जमा'' के रूप में परिभाषित किया। इसमें केवल वे परिसंपत्तियां शामिल हैं, जो सामान्यतौर से विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती है। परिसंपत्तियों से अभिप्राय तरल परिसंपत्तियों से है जिनका अर्थ है वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए कुल प्रभावी माँग को प्रभावित कर रही मौद्रिक मात्रा। इसमें व्यापक रूप से साख को शामिल समझा जाता है। इस प्रकार, समस्त तरलता स्थिति व्यय करने के निर्णयों से संबद्ध होती है। व्यय करना बैंक में नकदी या मुद्रा तक सीमित नहीं है, बल्कि मुद्रा की वह मात्रा है जिसे लोग एक परिसंपत्ति बेचकर या उधार लेकर या जैसे बिक्री से प्राप्त आय समझकर धारण कर सकते है। समिति ने मुद्रा के प्रचलन वेग की धारणा का प्रयोग नहीं किया क्योंकि संख्यात्मक स्थिरांक के रूप में इसमें कोई भी व्यावहारिक मात्रा नहीं पाई जाती है। इस विचारधारा को **केन्द्रीय बैंकिग या रेडक्लिफ दृष्टिकोण (Central Banking or RedcliffApproach)** के नाम से भी जाना जाता हैं। इनके अनुसार *"मुद्रा के अंतर्गत करेंसी, माँग जमा, गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों तथा असंगठित संगठनों द्वारा जारी की गयी कुल साख को शामिल किया जाता हैं।"*

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी (सिक्के और नोट) + माँग जमा + सावधि जमा + गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों के ऋणपत्र, बचत जमा, शेयर तथा बॉण्ड + असंगठित क्षेत्रों की साख   **Money Supply = Currency (Coins and Notes) + Demand Deposit + Time Deposit + Non-banking Financial Intermediaries – Debentures, Saving Bank Deposites, Shares, Bonds + Credit from Unorganized Sectors**

अशोधित अनुभवसिद्ध प्रयोगों के आधार पर कमेटी ने ब्याज दर द्वारा मुद्रा और आर्थिक क्रिया के बीच प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध नहीं पाया। परन्तु उसने सरलता के आधार पर इनमें नया संक्रमण तंत्र

(Infection system) प्रदान किया हैं। उन्होंने व्याख्या की कि ब्याज दरों में गति का अर्थ है वित्तीय संस्थाओं द्वारा धारित बहुत-सी परिसंपत्तियों के पूँजी मूल्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। ब्याज दरों में वृद्धि होने से कुछ उधारदाता कम उधार देते है, क्योंकि पूँजी का मूल्य गिर जाता है और इसलिए उनका ब्याज-दर ढ़ांचा दृढ़ होता है। दूसरी ओर, ब्याज दर में गिरावट उनके तुलन-पत्रों में वृद्धि करती है और उधारदाताओं को नया व्यवसाय खोजने के लिए प्रोत्साहित करती है।

1.4.4 गुर्ले-शॉ परिभाषा (DEFINITION OF GURLEY-SHAW)

जे.जी. गुरले (J.G. Gurley) तथा **ई. एस. शॉ (E.S. Shaw)**, वित्तीय मध्यस्थों द्वारा रखी गई अधिक मात्रा में तरल परिसंपत्तियां और गैर-बैंक मध्यस्थों की देयताओं को मुद्रा का निकट स्थानापन्न समझते हैं। मध्यस्थ संचय के रूप में मुद्रा के लिए स्थानापन्न प्रदान करते हैं। यथार्थ मुद्रा जिसे करेन्सी योग जमा परिभाषित किया गया है, केवल एक तरल परिसंपत्ति है। इस प्रकार, उन्होंने **तरलता पर आधारित मुद्रा की एक विस्तृत परिभाषा** निर्मित की है जिसमें बॉण्ड, इंशयोरेंस रिजर्व, पेंशन फंड, बचत और ऋण शेयर शामिल है। वे मुद्रा स्टॉक के वेग में विश्वास रखते है जो गैर-बैंक मध्यस्थों द्वारा प्रभावित होता है।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी (सिक्के और नोट) + माँग जमा + सावधि जमा + गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों के ऋणपत्र, बचत जमा, शेयर तथा बॉण्ड + असंगठित क्षेत्रों की साख

Money Supply = Currency (Coins and Notes) + Demand Deposit + Time Deposit + Non-banking Financial Intermediaries – Debentures, Saving Bank Deposites, Shares, Bonds + Credit from Unorganized Sectors

उपरोक्त विचारधारा को **जे.जी. गुरले (J.G. Gurley)** तथा **ई. एस. शॉ (E.S. Shaw)** ने अपनी पुस्तक *'Money in a Theory of Finance'* में प्रस्तुत किया था। फ्रीडमैन की परिभाषा में मुद्रा के अंतर्गत करेंसी, माँग जमा, तथा आवधि जमा को शामिल किया गया हैं जबकि इसमे इन तीनों के अतिरिक्त गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों के ऋणपत्रों, बचत जमा, शेयर तथा बॉण्ड को भी शामिल किया गया है।

1.4.5 पेसक-सेविंग की परिभाषा (DEFINITION OF PESEK-SAVING)

बी. पी. पेसक (B.P. Pesek) और **टी. आर. सेविंग (T.R. Saving)** के अनुसार, बैंकों की माँग जमा और सरकार द्वारा जारी करेंसी (नोट और सिक्के) मुद्रा में शामिल होने चाहिए। वे बैंक मुद्रा में समय और बचत खाते शामिल नहीं करते है। वे कुल मुद्रा को (जिसमें माँग-जमा शामिल है) समाज की शुद्ध संपत्ति मानते है। वे मुद्रा की ऋण के साथ तुलना करते है क्योकि मुद्रा ब्याज नहीं देती लेकिन ऋण ब्याज देता है। ऋण स्वयं संपत्ति नहीं है, क्योंकि जो बैंक मुद्रा को धारण करते है, उसे एक परिसंपत्ति मानते हैं, जबकि बैंक उसे प्रभावी देयता मानते है।

इस प्रकार, **बी. पी. पेसक (B.P. Pesek)** और **टी. आर. सेविंग (T.R. Saving)** मुद्रा की एक व्यवहार्य परिभाषा का अनुसरण करते है जिसमें तीन शर्ते शामिल हैः

1. वे वस्तु, मुद्रा और आदेश मुद्रा को उनके धारकों की परिसंपत्ति के रूप में मानते है और किसी की भी देयताएं नहीं मानते।
2. सरकार वाणिज्यिक बैंको को मुद्रा निर्माण के लिए एकाधिकार अधिकार प्रदान करती है, जो आगे व्यक्तियों के निजी ऋणों के लिए बैंक मुद्रा बेचकर इसका प्रयोग करते है। जिन व्यक्तियों के पास बैंक मुद्रा होती है वे इसे पूर्णरूप से एक परिसंपत्ति मानते है। दूसरी ओर, बैंक इसे एक प्रभावी देयता मानते है। अतः पेसक और सेविंग बैंक मुद्रा घटा रिजर्व (जो बैंक अपने जमाकर्ताओं की माँग को पूरा करने के लिए रखते है) को अर्थव्यवस्था की शुद्ध परिसंपत्ति मानते है। तुलन-पत्र (Balance sheet) में, बैंक मुद्रा को एक परिसंपत्ति और निजी ऋणों को एक देयता दिखाया जाता है।
3. यदि बैंक के द्वारा मुद्रा को निर्मित करना लागत रहित हो और जमा पर कोई ब्याज भुगतान नहीं दिए जाते, तो बैंक की शुद्ध संपत्ति अपरिवर्तित रहती है क्योंकि परिसंपत्तियां और देयताएं दोनों समान मात्रा में बढ़ते है। यह दर्शाता है कि बैंक की शुद्ध संपत्ति शून्य है।

पेसक और सेविंग बैंक मुद्रा में समय और बचत जमाओं को शामिल नहीं करते हैं। परन्तु जब ब्याज भुगतान हों तो वे बैंक मुद्रा में सम्मिलित होते हैं। उनका तर्क है कि एक बार जब ये जमाएं ब्याज देना प्रारम्भ करती है, तो वे मुद्रा का कार्य करती रहेंगी।

आलोचनाएं- पेसक और सेविंग की परिभाषा की निम्न आलोचनाएं की गई है-

1. **फ्रीडमैन (Friedman)** और **शर्वाटज (Sherwatz)** के अनुसार, पेसक और सेविंग की स्थिति का तर्क यह है कि मुद्रा शुद्ध-परिसंपत्ति के रूप में उच्च शक्तियुक्त मुद्रा (High Power Money) होनी चाहिए जिसे पेसक एवं सेविंग ने बहुत संकुचित कहकर अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार, उच्च शक्तियुक्त मुद्रा (High Power Money) पेसक एवं सेविंग की प्रथम कसौटी को पूरा करती हैं।
2. पेसक और सेविंग विश्लेषण में **पेटिनकिन (Patinkin)** कुछ भ्रांति पाता है, जब वे बैंक मुद्रा में समय और बचत जमा शामिल नहीं करते है। पेसक एवं सेविंग बैंकों द्वारा प्रयोग किए गए परम्परागत लेखांकन तरीकों की भी आलोचना करते हैं। परन्तु पेटिनकिन उनके मुद्रा निर्माण के विश्लेषण की परम्परागत लेखांकन द्वारा व्याख्या करता है और उसे अधिक लाभदायक पाता है।
3. पेसक और सेविंग की आलोचना सामाजिक संपत्ति को परिभाषित करने में बैंक-मुद्रा की दोहरी गणना करने के लिए भी की गई है। प्रथम, वे इसमें मुद्रा पूर्ति का भाग शामिल करते हैं, और फिर वे बैंकिग प्रणाली की शुद्ध संपत्ति को अन्य तत्व में सम्मिलित करते है। वास्तव में, एक या दूसरे की गणना करनी चाहिए, न कि दोनों की।

इन आलोचनाओं के बावजूद, पेसक और सेविंग का मुद्रा पर विचार महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे शुद्ध संपत्ति का अध्ययन करते हैं जो वाणिज्यिक बैंको को प्राप्त होती है।

1.5 मुद्रा के कार्य (Functions of Money)

प्रो. चैण्डलर का कथन है कि किसी आर्थिक प्रणाली में मुद्रा का केवल एक मौलिक कार्य है-माल तथा तथा सेवाओं के लेन-देन को सरल बनाना। मुद्रा के इस कार्य से लेन-देन में लगने वाले समय तथा परिश्रम की बचत होती है। मुद्रा के सभी कार्यो का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है-

(1) प्राथमिक या मुख्य कार्य,

(2) सहायक कार्य,

(3) आकस्मिक कार्य एवं

(4) अन्य कार्य।

1.5.1 प्राथमिक या मुख्य कार्य (Primary or Main Functions)

प्राथमिक या मुख्य कार्य- प्राथमिक मुद्रा के मुख्यतः दो कार्य हैः

(1) विनिमय का माध्यम,

(2) मूल्य मापक।

जिसका विवेचन निम्नवत् हैः

(1) विनिमय का माध्यम- मुद्रा में सामान्य स्वीकृति का गुण है। प्रत्येक व्यक्ति इसे स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। वर्तमान समय में जितना लेन-देन होता है उसका भुगतान अधिकतर मुद्रा के द्वारा होता है, एक उत्पादक द्वारा थोक विक्रेता को माल बेचा जाता है, बदले में मुद्रा प्राप्त की जाती है। थोक विक्रेता फुटकर व्यापारी को सामान बेचता है, बदले में मुद्रा प्राप्त करता है तथा फुटकर व्यापारी ग्राहक को मुद्रा के बदले में सामान बेचता है। इस प्रकार समाज के सभी क्रेता-विक्रेता, उपभोक्ता-व्यापारियों अथवा सेवक-मालिकों के बीच मुद्रा एक ऐसी कड़ी है जो प्रत्येक वर्ग को प्रतिफल दिलाने में सहायक होती है। अतः मुद्रा के बिना वर्तमान विनिमय व्यवस्था की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

(2) मूल्य मापक- मुद्रा का दूसरा कार्य है समाज में उत्पन्न अथवा प्रस्तुत सब सेवाओं का मूल्य-मापन करना हैं। जिस प्रकार भौतिक वस्तुओं के नाप, तौल, अथवा लम्बाई, चैड़ाई, आदि ग्राम, लीटर अथवा मीटर में नापे जाते हैं, उसी प्रकार सब वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य का एकमात्र माप मुद्रा है। वास्तव में मुद्रा के इस कार्य के बिना भी विनिमय सम्भव नहीं क्योंकि कोई भी वस्तु खरीदने से पहले ग्राहक उसका मूल्य जानना चाहता है और प्रत्येक वस्तु का मूल्य मुद्रा में जैसे 2 रू. मीटर, 3 रू. लीटर, 4 रू. किलोग्राम, आदि ही बताया जाता है जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति यह निश्चित कर लेता है कि अमुक वस्तु अमुक मात्रा में खरीदनी है। इस प्रकार, मुद्रा 'हिसाबी इकाई' के रूप में कार्य करती है। दूसरे शब्दों में वर्तमान समय में समूची क्रय-विक्रय व्यवस्था का आधार मुद्रा है।

1.5.2 सहायक कार्य (Secondary Functions)

प्राथमिक कार्यो के अलावा मुद्रा के कुछ सहायक कार्य भी है जो निम्नलिखित हैः

(1) भावी भुगतानों का आधार,

(2) मूल्य संचय का साधन,

(3) मूल्य हस्तान्तरण।

जिसका विवेचन निम्नवत् हैः

(1) भावी भुगतानों का आधार- वर्तमान समय का आर्थिक ढांचा साख पर आधारित है और साख अथवा उधार मुद्रा के रूप में ही दी जाती है। उधार देते समय ब्याज की दर तथा भुगतान की किस्तें मुद्रा में

ही निश्चित की जाती है जिससे ऋणी को यह निश्चय रहता है कि उसे कब और कितनी राशि चुकानी है। इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि मुद्रा भावी भुगतानों का उचित आधार तभी रह सकती है जबकि उसके मूल्य में सामान्यतः स्थिरता रहें। अन्य वस्तुओं की तुलना में मुद्रा के मूल्य में अधिक स्थिरता रहती है।

(2) मूल्य संचय का साधन- मनुष्य भविष्य की आकस्मिक विपत्तियों अथवा सामाजिक तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए अपनी वर्तमान आय का कुछ भाग बचाकर रखना चाहता है, परन्तु उसे यह निश्चय होना चाहिए कि उसकी बचत सुरक्षित है और उसका प्रयोग किसी भी समय कर सकता है। मुद्रा में बचत करना इस दृष्टि से भी उचित है कि उसे बैंक में जमा करके ब्याज भी कमाया जा सकता है। मुद्रा के रूप में मूल्य संचय को प्रोत्साहित करने के लिए आश्वयक है कि मुद्रा का मूल्य स्थिर रखने का प्रयत्न किया जाए अन्यथा लोग अपनी बचतें सोना, भूमि अथवा अन्य सम्पत्तियों के रूप में रखना पसन्द करेंगे क्योंकि इनके मूल्यों में कमी आने का भय नहीं होता है।

(3) मूल्य हस्तान्तरण- मुद्रा विनिमय माध्यम का कार्य करती है। इस मुख्य कार्य के कारण ही मुद्रा मूल्य हस्तान्तरण की सर्वोत्तम साधन बन गई है। उदाहरणतः, यदि कोई व्यक्ति जयपुर छोड़कर आगरा बसना चाहता है तो वह जयपुर स्थित मकान, जमीन तथा अन्य सारी सम्पत्ति मुद्रा में बेचकर आगरा में नई सम्पत्ति खरीद सकता है।

1.5.3 आकस्मिक कार्य (Contingent Functions)

प्राथमिक एवं सहायक कार्यों के अतिरिक्त प्रो. डेविड किनले ने मुद्रा के चार आकस्मिक कार्यो का उल्लेख किया हैः

(1) आय का वितरण,

(2) पूँजी की उत्पादकता बढ़ाना,

(3) साख का आधार,

(4) सम्पत्ति की तरलता।

जिसकी व्याख्या नीचे किया गया हैः

(1) आय का वितरण- किसी देश में जितना उत्पादन होता है उसमें भूमि, श्रम, पूँजी तथा साहस का सहयोग होता है, अतः प्रत्येक वर्ग को उसके सहयोग का उचित प्रतिफल मिलना चाहिए। मुद्रा में न केवल समस्त राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है बल्कि प्रत्येक वर्ग को उसके योगदान के अनुपात में भुगतान भी मुद्रा में ही दिया जाता है।

(2) पूँजी की उत्पादकता- यद्यपि पूँजी में अन्य कई तत्वों का समावेश होता है फिर भी मुद्रा पूँजी का सबसे बड़ा आधार है। मुद्रा के द्वारा ही पूँजी को ऐसे विनियोग में हस्तान्तरित किया जा सकता है जहां उसकी उत्पादकता तुलनात्मक रूप से अधिक हो। इससे पूँजी की गतिशीलता और उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(3) साख का आधार- बैंको तथा अन्य वित्तीय संस्थानों का व्यवसाय साख के आधार पर ही चलता है तथा साख का सृजन बैंको में जमा राशि के आधार पर किया जाता है जो मुद्रा के रूप में होती है। जमा राशि के कारण ही ग्राहकों का बैंकों में विश्वास बना रहता है।

(4) सम्पत्ति की तरलता- मुद्रा सम्पत्ति को तरल रूप प्रदान करती है। भूमि, मकान, मशीनें, आदि बेचने से इनके बदले में मुद्रा प्राप्त होती है। यह नकद राशि अधिकतम लाभ देने वाले स्थानों, केन्द्रों अथवा

व्यवसायों में सरलता से भेजी जा सकती है और इससे अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है। वास्तव में, प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के कुछ भाग को तरल रूप में ही रखना चाहता है।

1.5.4 अन्य कार्य (Other Functions)

उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त मुद्रा के कुछ और भी कार्य है जो निम्नवत् है:

(1) मुद्रा निर्णयों में सहायक- मुद्रा एक संचय का साधन है और उपभोक्ता अपनी दैनिक आवश्यकताओं को मुद्रा के अनुसार पूरा करता है। यदि उपभोक्ता के पास साइकिल है परन्तु निकट भविष्य में उसे स्कूटर की आवश्यकता है, तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता संचय की गई मुद्रा और साइकिल बेचकर स्कूटर खरीद सकता है। इस प्रकार मुद्रा निर्णय करने में सहायक होती है।

(2) समन्वय का आधार- व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में समन्वय मुद्रा द्वारा ही होता है। विभिन्न प्रकार की विदेशी सहायता का पुनर्भुगतान का मूल्य मुद्रा द्वारा मापा जाता है और विदेशी विनिमय में समन्वय भी मुद्रा द्वारा स्थापित होता है।

1.6 अभ्यास प्रश्न (PRACTICE QUESTIONS)

1.7 सारांश (SUMMARY)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यह जानकारी हो गई होगी कि मुद्रा किसे कहते है तथा यह अर्थव्यवस्था में किस प्रकार कार्य करती है।

1.8 शब्दावली (GLOSSARY)

- **परिसंपत्ति (Assets):-** इसका सम्बन्ध तरल परिसंपत्तियों से है जिनका अर्थ है वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए कुल प्रभावी माँग को प्रभावित कर रही मौद्रिक मात्रा। इसमें व्यापक रूप से साख को शामिल समझा जाता है।
- **सावधि जमा (Time Deposit):-** सावधि जमा से आशय बैंकों में जमा की गयी उस राशि से है जिसे एक निश्चित समय के बाद ही बैंक से निकाला या निकलवाया जा सकता हैं।
- **गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ (Non Banking Financial Intermediary):-** इसके अंतर्गत बचत तथा ऋण समितियाँ, जीवन बीमा निगम, बचत बैंक आदि को सम्मिलित किया जाता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (ANSWERS FOR PRACTICE QUESTIONS)

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade*', Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics*', Published by Himalaya Publishing House.

- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

1.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न (ESSAY TYPE QUESTIONS)

प्रश्न 1 मुद्रा की प्रकृति और कार्यो का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2 मुद्रा की परिभाषा दीजिए और उसके कार्यो की विवेचना कीजिए।

इकाई 2 : मुद्रा स्फीतिः- प्रकार, प्रभाव एवं नियन्त्रण
(UNIT 2 : INFLATION:- TYPES, EFFECTS AND CONTROL)

2.1 प्रस्तावना

2.2. उद्देश्य

2.3 मुद्रा स्फीति का अर्थ

2.3.1 मुद्रा स्फीति के रूप

2.3.2 मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्त अथवा मुद्रा स्फीति के कारण

2.3.3 मुद्रा स्फीति के प्रभाव

2.3.4 मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण

2.4 अभ्यास प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र मनुष्य के दैनिक जीवन का व्यावहारिक शास्त्र है। इस तथ्य की सार्थकता उस समय और सिद्ध हो जाती है जब हम स्फीति का अध्ययन करते हैं। स्थैतिक रूप में मूल्य में वृद्धि को स्फीति कहते हैं, परन्तु प्रावैगिक रूप में कीमतों में सतत् वृद्धि को स्फीति कहते हैं। आर्थिक अस्थिरता कभी विकसित देशा की समस्या हुआ करती थी, परन्तु आज विश्व अर्थव्यवस्था के बदले हुए स्वरूप ने इसे सबके लिए एवं सबकी समस्या में परिवर्तित कर दिया है। स्फीति एवं अवस्फीति इसके मुख्य घटक हैं। यह इकाई स्फीति के अध्ययन से सम्बन्धित है। स्फीति के विभिन्न पहलुओं जैसे-क्या है, क्यों घटित होती है, किसे प्रभावित करती है तथा कैसे नियन्त्रित की जा सकती है? आदि की विस्तृत व्याख्या इस अध्याय में प्रस्तुत की जायेगी। यद्यपि की मुद्रा स्फीति बहुत व्यापक अवधारणा है किन्तु इस इकाई में अत्यन्त महत्वपूण्र एवं उपयोगी सामग्री पर ही विचार किया जायेगा।

2.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य छात्रों के अन्दर निम्नलिखित की समझ पैदा करना है।

- ✓ मुद्रा स्फीति का अर्थ एवं परिभाषा से परिचित कराना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के विभिन्न रूपों को समझना।
- ✓ स्फीतिक अन्तराल की धारणा को स्पष्ट करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्तों/कारणों को स्पष्ट करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के प्रभावों की समझ उत्पन्न करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के तरीकों से परिचित कराना।

2.3 मुद्रा स्फीति का अर्थ

मुद्रा स्फीति एक विवादित अवधारणा है। एक सर्वमान्य परिभाषा न होने के कारण इसके स्वरूप तथा स्वभाव की व्याख्या करने के लिए प्रचलित परिभाषाओं को तीन भागों में बांटा जाता है।

(अ) सामान्य दृष्टिकोण -

क्राउथर के अनुसार, *''स्फीति वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य गिर रहा हो अर्थात् वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हों।''* यह परिभाषा सभी प्रकार की मूल्य वृद्धि को स्फीति मानती है। जबकि मन्दीकाल में मूल्यों में होने वाली वृद्धि स्फीति नहीं कही जायेगी। इसके अलावा यह परिभाषा केवल रोग के लक्षण को व्यक्त करती है इसके कारण एवं स्वभाव को नहीं।

(ब) मुद्रा परिमाण सिद्धान्त दृष्टिकोण -

हाट्रे, केमरर तथा गोल्डेन वीजर तथा **मिल्टन फ्रीडमैन** स्फीति को मौद्रिक घटना मानते हैं। फ्रीडमैन के अनुसार, *''प्रत्येक जगह एवं प्रत्येक समय मुद्रा स्फीति एक मौद्रिक घटना है और यह उत्पादन की तुलना में मुद्रा की मात्रा में अधिक वृद्धि होने के कारण उत्पन्नन होती है।''* अर्थात् वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल लेन-देन के सन्दर्भ में मुद्रा की मात्रा मूल्य स्तर का निर्धारण करती है। वस्तुओं तथा सेवाओं की तुलना में यदि मुद्रा की मात्रा अधिक हो जाय तो निश्चित रूप से मूल्य में वृद्धि होगी और यही मुद्रा स्फीति होगी। इसी बात को कोलबार्न से इस प्रकार व्यक्त किया। *''बहुत अधिक मुद्रा द्वारा बहुत कम वस्तुओं का पीछा करना ही मुद्रा स्फीति है।''* **पीगू** ने लिखा कि, *"…. too much money cashes too few goods."*अर्थात् बहुत अधिक मुद्रा बहुत कम वस्तुएँ प्राप्त करती है। टी.ई. ग्रेगरी, हाट्रे तथा केमरर भी मुद्रा की मात्रा में असामान्य वृद्धि को ही मुद्रा स्फीति मानते हैं।

उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ यह मानती हैं कि मुद्रा की पूर्ति स्फीति का मुख्य कारण हैं। सभी परिभाषाएँ अपना ध्यान एक विशेष प्रकार की स्फीतिक स्थिति पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। यह मान लिया गया है कि

बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और माँग तथा पूर्ति में कोई परिवर्तन बिना किसी अपवाद के कीमत में परिवर्तन करता है परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता ही शायद कभी पायी जाती हो। इसके अलावा कीमतों को कभी-कभी सरकार द्वारा भी नियन्त्रित किया जाता है।

(ग) पूर्ण रोजगार दृष्टिकोण -

कींस मुद्रा परिमाण दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उनके अनुसार यदि अर्थव्यवस्था में मानवीय एवं गैर मानवीय संसाधन बेकार पड़े हैं तब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि मूल्य में वृद्धि करने के बजाय उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि करेगी तथा स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न नहीं होगी। कींस ने पूर्ण रोजगार के पहले भी मूल्य में वृद्धि की सम्भावना को स्वीकार किया परन्तु उसे आंशिक स्फीति की संज्ञा दी। पूर्ण रोजगार के बाद अतिरिक्त माँग की दशाएँ, पूर्ति के बेलोचदार हो जाने के कारण, वास्तविक स्फीति को जन्म देती है। कींस के सिद्धान्त को एक चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

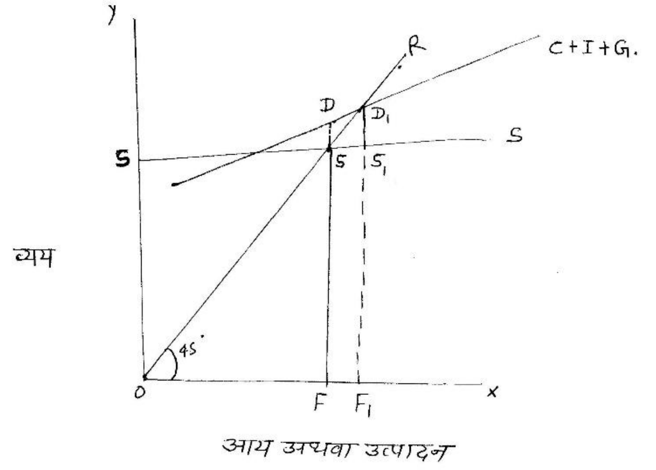

उपर्युक्त चित्र में ग अक्षर पर आय तथा ल अक्षर पर व्यय प्रदर्शित है। व्त् समान वितरण रेखा आय तथा व्यय के बीच सन्तुलन बिन्दुओं को व्यक्त करती है। C + I + G (उपभोग व्यय (C), विनियोग व्यय (I) तथा सरकारी व्यय (G) आय के विभिन्न स्तरों पर समग्र प्रभावपूर्ण माँग को व्यक्त करता है। पूर्ण रोजगार का स्तर os या OF द्वारा व्यक्त किया गया है। SS रेखा x अक्ष के समानान्तर एक सीधी रेखा है जो यह बताता है कि पूर्ण रोजगार के बाद उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं है। चित्र से स्पष्ट है कि OF आय के स्तर पर उत्पादन की क्षमता FS तथा प्रभावपूर्ण माँग FD है। अर्थात् DS अतिरिक्त माँग है। आय के OF_1 स्तर पर अतिरिक्त माँग D_1S_1 है। अतः पूर्ण रोजगार के बाद अतिरिक्त माँग की मात्रा कीमत स्तर के व्यवहार का निर्धारण करती है। स्पष्ट है कि समग्र प्रभावपूर्ण माँग को पूर्ण क्षमता स्तर (Full Capacity Level) तक लाकर अतिरिक्त माँग को समाप्त किया जा सकता है।

2.3.1 मुद्रा स्फीति के रूप

मुद्रा स्फीति को मात्रा, गति प्रक्रिया तथा समय के आधार पर कई रूपों में व्यक्त किया जा सकता है।

(1) खुली एवं दमित स्फीति - खुली स्फीति की दशा में बाजार स्वतन्त्र होता है तथा माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित मूल्य स्तर अतिरिक्त माँग की स्थिति, जिसे स्फीति कहते हैं, को व्यक्त करता है। दमित स्फीति का सम्बन्ध नियन्त्रित कीमतों से होता है। यह कीमतें जीवन लागत सूचकांक को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है और माँग तथा पूर्ति की वास्तविक स्थिति को प्रतिबिम्बित नहीं करती है।

(2) रेंगती, चलती-दौड़ती तथा कूदती मुद्रा स्फीति- रेंगती स्फीति का स्वभाव नम्र होता है तथा यह अर्थव्यवस्था के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती है। केण्ट का मानना है कि 3 प्रतिशत वार्षिक मूल्य वृद्धि को रंगती स्फीति समझना चाहिए। चलती स्फीति तब होती है जब वार्षिक मूल्य वृद्धि 3 से 4 प्रतिशत वार्षिक हो। दौड़ती हुई स्फीति में वार्षिक मूल्य वृद्धि की दर 10 प्रतिशत वार्षिक होती है, जबकि कूदती स्फीति में वार्षिक मूल्य वृद्धि की दर 100 प्रतिशत तक हो जाती है। उपर्युक्त स्थितियों को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

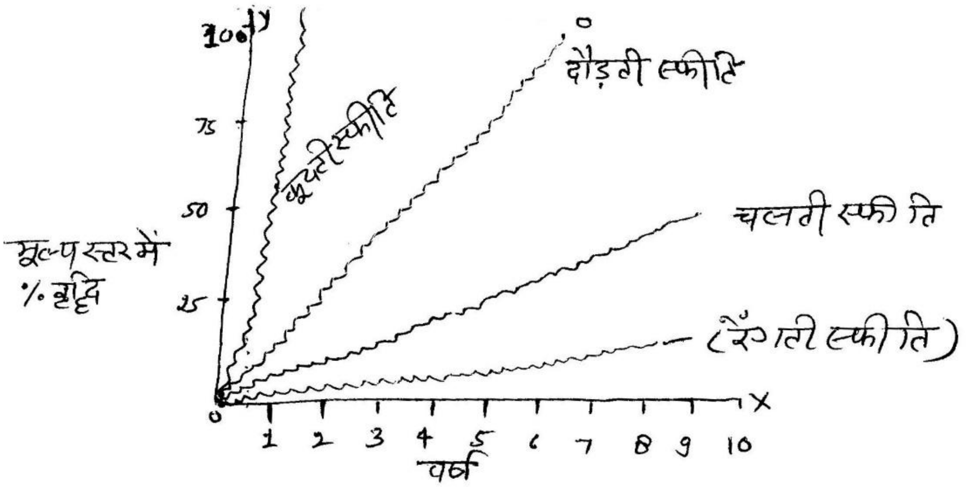

(3) वस्तु स्फीति- उत्पादन में कमी होने के कारण जब सामान्य मूल्य में वृद्धि होती है तब उसे वस्तु स्फीति कहते हैं।

(4) मुद्रा स्फीति- जब अत्यधिक पत्र मुद्रा निर्गमन के कारण सामान्य मूल्य स्तर बढ़ता है तब उसे मुद्रा स्फीति कहते हैं। ऐसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में हुआ।

(5) साख स्फीति- जब मुद्रा की पूर्ति तो स्थिर रहे परन्तु व्यापारिक बैंकों द्वारा अत्यधिक साख का सृजन करने के कारण सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि हो तब उसे साख स्फीति कहते हैं।

(6) घाटा प्रेरित स्फीति- जब सरकार अपने व्यय को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था (नोट निर्गमन) अपनाती है तब सामान्य मूल्य स्तर बढ़ जाता है, इसे घाटा प्रेरित स्फीति कहते हैं।

(7) मजदूरी प्रेरित स्फीति- श्रम संघ सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति का प्रयोग करके मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जाते हैं, जिससे लागत बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में मूल्य में होने वाली वृद्धि लागत प्रेरित स्फीति कहलाती है।

(8) लाभ प्रेरित स्फीति- निर्माताओं के लाभ में वृद्धि के कारण मूल्य स्तर में होने वाली वृद्धि लाभ प्रेरित स्फीति कहलाती है।

(9) पूर्ण एवं आंशिक स्फीति- जब मूल्य स्तर में वृद्धि समाज के सभी वर्गों तथा सभी वस्तुओं को प्रभावित करती है तब उसे पूर्ण स्फीति कहते हैं परन्तु यदि प्रभाव कुछ विशेष क्षेत्र एवं वस्तुओं तक सीमित रहता है तब उसे आंशिक स्फीति कहते हैं।

2.3.2 मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्त अथवा मुद्रा स्फीति के कारण

यद्यपि की मुद्रा स्फीति के अनेक कारण हैं, परन्तु इस इकाई में हम लोग तीन महत्वपूर्ण कारण अथवा सिद्धान्त पर चर्चा करेंगे -

(क) माँगजन्य मुद्रा स्फीति (Demand Pull Inflation)

कींसवादी तथा मुद्रावादी दोनों ही यह मानते हैं कि अतिरिक्त माँग मुद्रा स्फीति का कारण है। मुद्रावादियों के अनुसार मुद्रा की मात्रा में वृद्धि स्फीति के लिए जिम्मेदार है जबकि कींसवादियों के अनुसार कुल व्यय में वृद्धि माँग को बढ़ाती है जो स्फीति का कारण है। इसका अभिप्राय यह है कि मूल्य में वृद्धि केवल मुद्रा की मात्रा में वृद्धि से ही नहीं होती, बल्कि मुद्रा की मात्रा अपरिवर्तित रहने पर भी यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा व्यक्ति की उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि के कारण कुल व्यय में होने वाली वृद्धि मूल्य स्तर को बढ़ा देगी।

कींस के अनुसार पूर्ण रोजगार के पहले मुद्रा की मात्रा या माँग में वृद्धि से मूल्य में होने वाली वृद्धि बाधा स्फीति (Bottle neck Inflation) कहलाती हैं। पूर्ण रोजगार के बाद यदि माँग और बढ़ती है तो केवल मूल्य में वृद्धि होती है। इसे ही वास्तविक स्फीति (True Inflation) कहा जाता है। इस स्थिति को चित्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

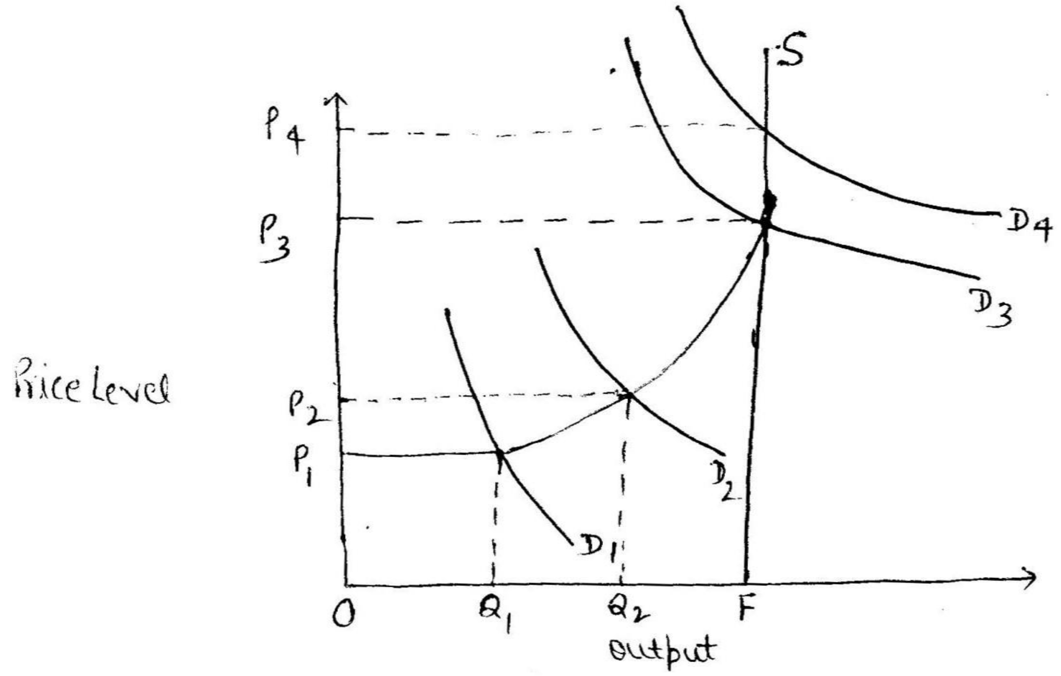

उपर्युक्त चित्र में माँग प्रेरित स्फीति प्रदर्शित है। ग अक्ष पर उत्पादन तथा ल अक्ष पर कीमत स्तर प्रदर्शित है। थ् बिन्दु पूर्ण रोजगार बिन्दु है। थ् बिन्दु के पहले माँग बढ़ने पर (P_1 से P_2) उत्पादन एवं मूल्य दोनों बढ़ते हैं। इसलिए कींस इसे अर्द्ध स्फीति कहते हैं। किन्तु थ् बिन्दु के वाद माँग बढ़ने से केवल मूल्य P_3 से P_4 हो जाता है जबकि उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती है और पूर्तिरेखा s पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है, यही वास्तविक स्फीति है।

(ख) लागत वृद्धि स्फीति (Cost Push Inflation)

जॉन मेनार्ड कींस द्वारा प्रतिपादित *'जनरल थियरी (General Theory)'* तथा *'हाऊ टू पे फार द वार (How to pay for the war)'* के प्रकाशन के बाद मूल्य स्तर के निर्धारण में लागत की अवहेलना की गयी। 1959 में विलाई थार्प तथा **रिचर्ड क्वांट** ने अपनी पुस्तक *'द न्यू इन्फ्लेशन (The New Inflation)'* में मूल्य स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों में लागत पर जोर दिया। लागतों में आक्रामक वृद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे- एकाधिकारी अंश की विद्यमानता, श्रम संघों का

दबाव, उत्पादक का अल्पाधिकारी दशाओं में कार्य करना, दबाव डालने वाले अन्य सामाजिक कारण, सरकार द्वारा चलाये गये श्रम कल्याणकारी कार्यक्रम तथा सरकारी नियम और कानून आदि लागत में वृद्धि कर सकते हैं, लागत प्रेरित स्फीति तीन प्रकार की होती है-

(1) मजदूरी प्रेरित स्फीति- श्रम लागतों में वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि से मूल्य में होने वाली वृद्धि को मजदूरी प्रेरित स्फीति कहते हैं।

(2) लाभ प्रेरित स्फीति - लाभ में वृद्धि के कारण मूल्यों में होने वाली वृद्धि को लाभ प्रेरित स्फीति कहते हैं।

(3) सामग्री लागत प्रेरित - उत्पादन साधनों की कीमतों में वृद्धि होने के कारण मूल्य स्तर में होने वाली वृद्धि सामग्री लागत प्रेरित स्फीति कहलाती है।

लागत प्रेरित स्फीति को रेखाचित्र द्वारा समझाया जा सकता है।

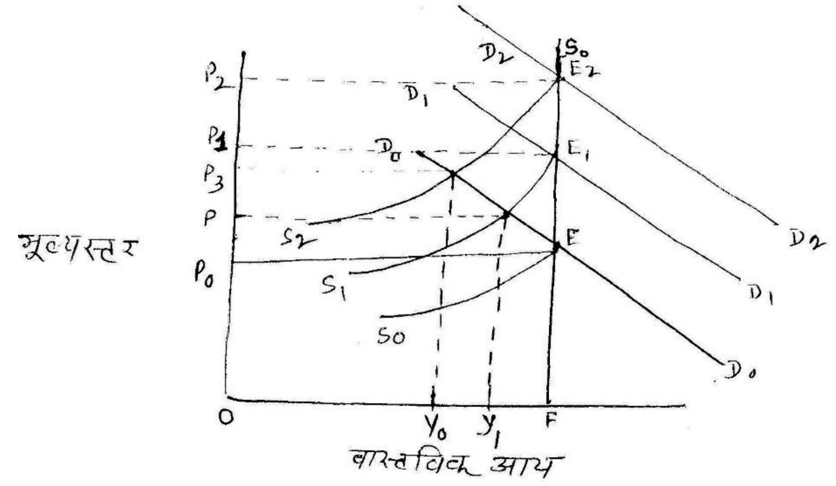

इस चित्र में D_0D_0 माँग फलन तथा S_0S_0 पूर्ति फलन है जो E बिन्दु के बाद पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है। OF पूर्ण रोजगार स्तर की आय है। E बिन्दु पर अर्थव्यवस्था साम्य में है क्योंकि यहाँ माँग (D_0D_0) द्ध तथा पूर्ति (S_0S_0) बराबर हैं। मान लिया मजदूरों की मजदूरी बढ़ने तथा एकाधिकारिक या अल्पाधिकारिक उद्योगों द्वारा ऊँची कीमत लिये जाने के कारण पूर्ति रेखा S_1S_0 हो जाती है। परिणामस्वरूप नया साम्य पूर्ण रोजगार स्तर से कम आय OY_1 तथा मूल्य स्तर OP पर स्थापित होता है। पूर्ति के और विवर्तित होने पर पूर्ति रेखा S_2S_0 हो जाती है जो आय के स्तर OY_0 तथा मूल्य स्तर OP_0 पर सन्तुलन स्थापित करता है। यदि सरकार पूर्ण रोजगार के स्तर के आय OF को बनाये रखना चाहती है तब उसे माँग बढ़ाना पड़ेगा। माँग के D_1D_1 होने पर आय के OF स्तर पर कीमत स्तर OP_1 है जो OP से अधिक है। यदि माँग और बढ़ कर D_2D_2 हो जाती है तब आय के OF स्तर पर कीमत स्तर OP_2 हो जायेगी जो OP_3 से अधिक है।

माँग आधिक्य तथा लागत वृद्धि स्फीति की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि वास्तव में मुद्रा स्फीति दोनों कारणों का मिश्रित प्रभाव है। स्फीति का प्रारम्भ किसी भी एक कारण से हो सकता है परन्तु अन्तिम रूप में दोनों संयुक्त रूप से प्रभाव डालते हैं।

मुद्रा स्फीति के कारणों को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-

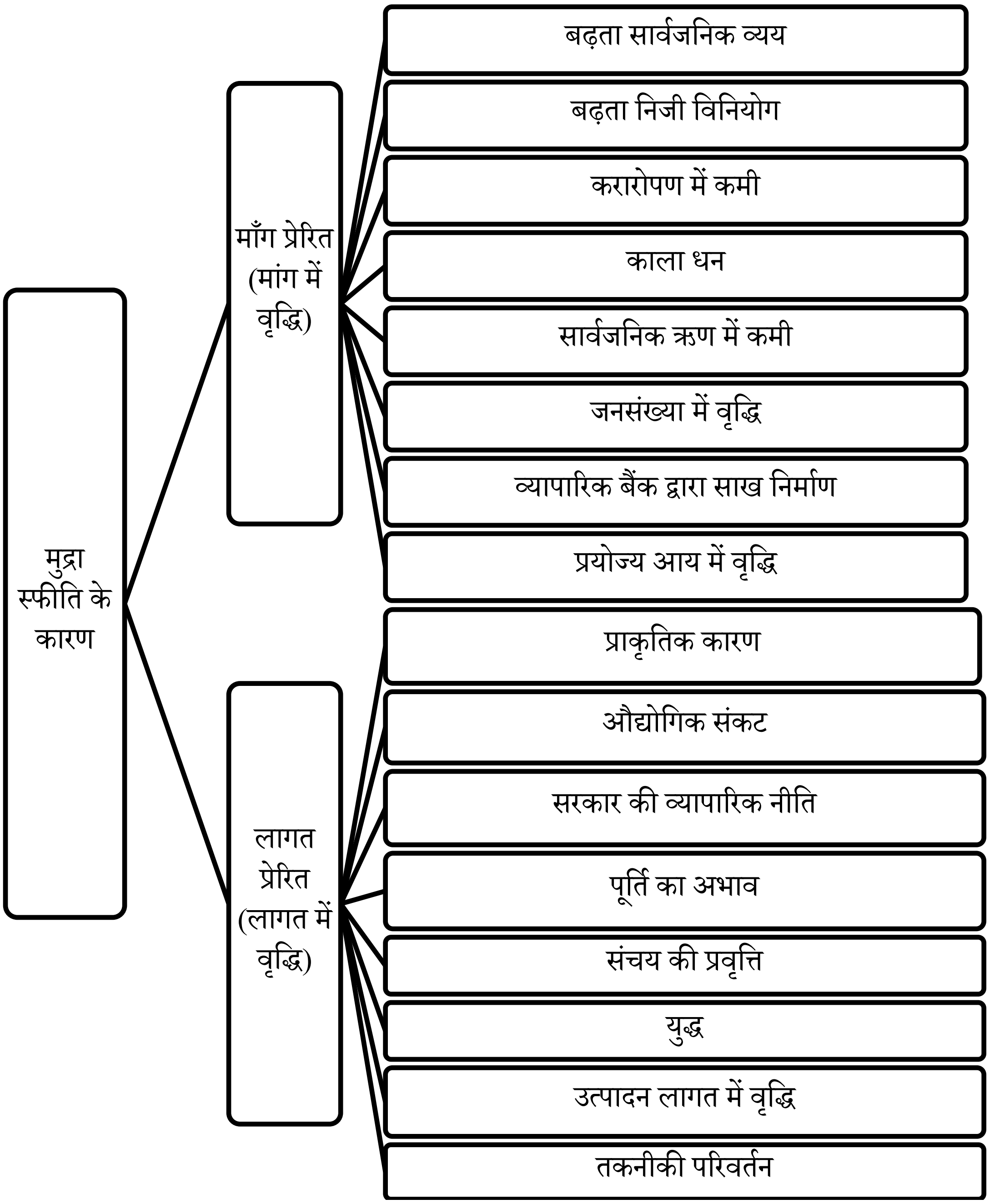

2.3.3 मुद्रा स्फीति के प्रभाव

1922 में जर्मनी में व्याप्त मुद्रा स्फीति पर गौर करें तो हम पाते हैं कि स्फीति, आर्थिक विषमता, सामाजिक असन्तोष, भ्रष्टाचार एवं नैतिक पतन, बनावटी समृद्धि, साधनों का अनुपयुक्त आवंटन तथा मुद्रा में अविश्वास, जैसी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। मुद्रा स्फीति के प्रभाव के चार भागों में बांटा जा सकता है-

(अ) आर्थिक प्रभाव (ब) गैर आर्थिक प्रभाव

(स) सामाजिक प्रभाव (द) राजनैतिक प्रभाव

(अ) आर्थिक प्रभाव

1. उत्पादन तथा रोजगार पर प्रभाव - स्फीति की मन्द गति निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था के लिए बूस्टर का कार्य करती है। मूल्यों में थोड़ी वृद्धि उत्पादकों में सकारात्मक उत्साह पैदा करती है, जिससे उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती और उनका लाभ बढ़ता है परन्तु पूर्ण रोजगार के बाद केवल कीमतें बढ़ती हैं, जिससे उत्पादन में कमी तथा बेरोजगारी फैलती है। तीव्र स्फीति उत्पादन के बजाय सट्टेबाजी को बढ़ावा देती है, जिससे बाजार में अनिश्चितता उत्पन्न होती है। वास्तविक आय कम हो जाने के कारण बचत तथा पूँजी निर्माण प्रभावित होता है। बाहरी वस्तुओं के सस्ता होने के कारण बचत तथा पूँजी निर्माण प्रभावित होता है। बाहरी वस्तुओं के सस्ता होने के कारण लोग आयात पर अधिक आश्रित होने लगते हैं, जिससे देश की पूँजी बाहर की ओर पलायन करने लगती है। मूल्य अधिक होने के कारण लोगों में वस्तुओं के संचय की प्रवृत्ति बढ़ती है, जिससे वस्तुओं की कमी की समस्या संचयी रूप ले लेती है। साधनों का बंटवारा भी लाभपूर्ण उद्योगों के पक्ष में हो जाता है, परिणामस्वरूप आवश्यक वस्तुओं के स्थान पर विलासित पूर्ण वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

2. आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर प्रभाव - मुद्रा स्फीति निश्चित रूप से मौद्रिक आय में तेजी से वृद्धि करती है परन्तु इसका बंटवारा समाज के सभी वर्गों में बराबर नहीं होता है चूंकि सभी वस्तुओं के मूल्य में समान वृद्धि नहीं होती है, इसलिए आय के वितरण में असमानता स्वाभाविक है। उत्पादक, व्यापारी तथा सट्टेबाज स्फीति से लाभान्वित होते हैं, क्योंकि कींस के अनुसार - कीमत तथा मजदूरी (लागत) की दौड़ में मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती हैं और इन्हें आकस्मिक लाभ प्राप्त होता रहता है।

3. ऋणी तथा ऋणदाता पर प्रभाव - मुद्रा स्फीति से ऋणी को लाभ तथा ऋणदाता को हानि होती है। एक व्यक्ति 2010 में किसी साहूकार से 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से रु0 1000 उधार लेता और उससे 1 क्विंटल गेहूँ खरीदता है। 2012 में वह साहूकार को रु0 1200 वापस करता है परन्तु स्फीति के कारण 1 क्विंटल गेहूँ का मूल्य रु0 1400 हो गया है। ऐसे में साहूकार को रु0 200 का लाभ नहीं बल्कि रु0 200 की हानि होगी।

4. निवेशक पर प्रभाव - निवेश के स्वरूप के अनुसार निवेशकों पर प्रभाव पड़ता है। बॉण्ड तथा ऋण पत्रों में, जिनका प्रतिफल स्थिर रहता है, निवेश कम हो जाता है। इक्वीटी, जिस पर प्रतिफल की दर मूल्य स्तर से सम्बद्ध होती है, में निवेश हो सकता है। कीमत बढ़ने पर शेयरों पर प्रतिफल बढ़ता है इसलिए निवेश हो सकता है।

5. स्थिर आय वर्ग पर - निश्चित रूप से आय के स्थिर रहने पर स्फीति से क्रय शक्ति घट जाती है और स्थिर आय वर्ग पर विशेषकर वेतनभोगी वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि की श्रम संघ कुछ वेतन बढ़वाने में सफल हो जाते हैं किन्तु जैसा कि कींस ने कहा कि मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती हैं।

6. किसानों पर प्रभाव - किसान उत्पादक तथा ऋणी दोनों होते हैं, इसलिए इनके उपर स्फीति का अच्छा प्रभाव पड़ता है। कर और ब्याज बढ़ते तो हैं लेकिन उपज का मूल्य अधिक तेजी से बढ़ता है। इसके साथ ही उन्हें अपने ऋणों की अदायगी करने में भी सहायता मिलती है।

7. उपभोक्ता वर्ग - यदि उपभोक्ता की आय परिवर्तनशील है तब तो स्फीति का प्रभाव बुरा नहीं पड़ेगा, परन्तु इस श्रेणी के उपभोक्ता कम ही होते हैं। अधिकतर उपभोक्ताओं की आय स्थिर होती है तथा स्फीति उनकी क्रय शक्ति को कम कर देता है। परिणामस्वरूप इन्हें अपने वर्तमान जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए पहले से अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

जर्मनी की स्फीति को लक्ष्य करके **सेम्युलसन** ने लिखा कि, *"पहले हम जेब में द्रव्य ले जाते थे और टोकरे में सामान ले आते थे और अब हम टोकरे में द्रव्य ले जाते हैं और जेब में सामान ले आते हैं।"*

(ब) गैर-आर्थिक प्रभाव –

मुद्रा स्फीति के गैर आर्थिक प्रभाव निम्नलिखित हैं-

1. नैतिक पतन -ऊँचे मूल्य से अधिक लाभ कमाने के लिए उत्पादक तथा व्यापारी अनैतिक कार्यो, जैसे- मिलावट, किस्म में गिरावट तथा मुनाफाखोरी, में संलग्न हो जाते है।

2. घूसखोरी का प्रोत्साहन - नियन्त्रणों को लागू करने के नाम पर सरकारी तन्त्र भी उस व्यवस्थित अव्यवस्था का अंग बन जाता है और घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार शिष्टाचार का रूप लेता है।

(स) सामाजिक प्रभाव –

मुद्रा स्फीति के सामाजिक प्रभाव निम्नलिखित है-

1. आर्थिक विषमता - मुद्रा स्फीति धनी तथा अवसर सम्पन्न लोगों को और धनी तथा गरीबों और मजलूमों को और अधिक मजबूर कर देती है। इससे समाज में असन्तोष तथा अशान्ति बढ़ती है।

2. बेरोजगारी में कमी - इसे बुराई का अच्छा लाभ कहा जा सकता है, बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना होने के कारण बेरोजगारी की समस्या का काफी हद तक समाधान हो जाता है।

3. संचय में कमी - स्फीतिकाल में क्रय शक्ति में कमी होने के भय से लोग वस्तुओं को खरीदना प्रारम्भ कर देते हैं, जिससे संचय की प्रवृत्ति घटती है।

4. हड़तालें- स्फीति काल में मजदूरी बढ़ाने के लिए प्रायः हड़तालें होती रहती हैं।

(द) राजनैतिक प्रभाव -

1. राजनैतिक परिवर्तन - सरकारों के लिए सदैव मूल्यों में तीव्र वृद्धि चिन्ता का विषय रही है। यह जनता में असन्तोष तथा सरकार के प्रति जनता में अविश्वास उत्पन्न करती है। इसका अन्य विपक्षी दल लाभ उठाते हैं तथा कभी-कभी सत्ता ही परिवर्तित हो जाती है। स्फीति के कारण इटली, फ्रान्स तथा स्पेन में सत्ता परिवर्तन हुए हैं।

2. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वेमानी- स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए सरकार द्वारा तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रभावित होती है तथा प्रजातन्त्र व्यावहारिक स्वरूप खो देते हैं।

2.3.4 मुद्रा स्फीति का नियन्त्रण

समाज के विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले कुप्रभाव को देखते हुए मुद्रा स्फीति पर त्वरित एवं प्रभावशाली नियन्त्रण अपरिहार्य है। मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए तीन उपाय किये जा सकते है।

(अ) मौद्रिक उपाय (ब) राजकोषीय उपाय (स) अन्य उपाय

मुद्रा स्फीति को नियन्त्रित करने के विभिन्न उपायों को संक्षेप में इसप्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

स्फीति रोकने के उपाय

मौद्रिक उपाय	राजकोषीय उपाय	अन्य उपाय
☐ मुद्रा की मात्रा पर नियन्त्रण	☐ कर प्रबन्धन	☐ उत्पादन का नियमन
	☐ व्यय प्रबन्धन	☐ वितरणात्मक न्याय
☐ प्रचलित करेंसी का विमुद्रीकरण	☐ ऋण प्रबन्धन	☐ सट्टेबाजी पर नियन्त्रण
	☐ मुद्रा का अधिमूल्यन	☐ मूल्य नियन्त्रण तथा

- ☐ साख का नियमन
- राशनिंग
- ☐ आयात प्रोत्साहन
- ☐ मजदूरी नीति का निर्धारण

मौद्रिक उपाय -

अर्थव्यवस्था पर वांछनीय प्रभाव डालने के लिए केन्द्रीय बैंक जो उपाय अपनाता है उसे मौद्रिक उपाय कहा जाता है। केन्द्रीय बैंक इस उद्देश्य से निम्नलिखित यन्त्रों (Tools) का प्रयोग करता है।

(i) मुद्रा की मात्रा पर नियन्त्रण- मुद्रावादियों के अनुसार स्फीति का मुख्य कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि है। स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए मुद्रा की मात्रा को कम करना अनिवार्य प्राथमिकता है, इसलिए नोट निर्गमन पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

(ii) पुरानी करेंसी का विमुद्रीकरण - पुरानी एवं बड़ी नोटों का विमुद्रीकरण (कानूनी ग्राह्यता समाप्त करना) एक तरफ तो मुद्रा की मात्रा को कम करके स्फीति को नियन्त्रित करने में मदद करता है, दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था से कालेधन को कम करने में भी सहायक होता है।

(iii) साख का नियमन - केन्द्रीय बैंक परिमाणात्मक तथा चयनात्मक विधियों द्वारा साख की मात्रा को नियमित करके स्फीति के प्रभाव को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। इसके लिए केन्द्रीय बैंक निम्नलिखित यन्त्र का प्रयोग करता है। बैंक दर में वृद्धि करके केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की साख सृजन की क्षमता कम कर देता हे, जिससे मुद्रा की पूर्ति कम हो जाती है और स्फीति को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(iv) **न्यूनतम नकद कोष** - इस कोष में वृद्धि करके भी मुद्रा की पूर्ति को कम किया जाता है, जिसको स्फीति का प्रभाव कम होता है।

(v) खुले बाजार की क्रियाएँ - सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय खुले बाजार की क्रियाएँ कहलाती हैं। प्रतिभूतियों को बेचकर जनता की क्रय शक्ति कम करके स्फीति के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

(vi) साख की राशनिंग- केन्द्रीय बैंक कानूनी एवं नैतिक दबावों का प्रयोग करके साख सृजन की अधिकतम सीमा निर्धारित कर सकता है, जो मुद्रा की पूर्ति को सीमा में रखकर स्फीति के प्रभाव को कम कर सके।

(vii) मौद्रिक नीति की सीमाएँ- जर्मनी की स्फीति तथा महानमन्दी ने यह सिद्ध कर दिया कि मौद्रिक नीति की अपनी सीमाएँ है। वास्तव में कीमत के बढ़ने तथा घटने की प्रत्याशा दोनों (स्फीति एवं अवस्फीति) को संचयी बना देती है, परन्तु प्रत्याशा पर मौद्रिक नीति प्रहार नहीं कर पाती है।

(ब) राजकोषीय उपाय – अर्थव्यवस्था पर वांछनीय प्रभाव डालने के लिए सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियों को राजकोषीय नीति अथवा उपाय कहते हैं।

सरकार अतिरिक्त क्रय शक्ति को कम करने के लिए कर में वृद्धि कर सकती है।

सरकारी बड़े पैमाने पर जनता से ऋण लेकर उत्पादक कार्य में लगा सकती है। इससे एक तरफ तो क्रय शक्ति कम होगी तथा दूसरी तरफ उत्पादन बढ़ेगा। इस प्रकार दोनों क्रियाएँ स्फीति के प्रभाव को कम करेंगी। सरकार सार्वजनिक व्यय में कमी करके, विशेषकर अनुत्पादक व्यय में, स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है।

सरकार उपभोक्ता वस्तुओं पर कर लगाकर बचत को प्रोत्साहित कर सकती है, जिससे कम क्रय शक्ति बाजार का रुख करें। सरकार मुद्रा का अधिमूल्यन करके स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है। अधिमूल्यन से आयात बढ़ता है तथा निर्यात कम होता है। दोनों से देश में पूर्ति बढ़ती है और कीमत को कम करने में सहायता मिलती है।

(स) अन्य उपाय - इसे प्रत्यक्ष उपाय भी कहा जाता है, इसका प्रयोग करके स्फीति के प्रभाव को कम या समाप्त किया जा सकता है। सरकार निम्नलिखित उपायों द्वारा स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है-

(i) उत्पादन में वृद्धि - सरकार वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग करके, कच्चे माल की पूर्ति बढ़ाकर तथा प्रबन्धन की कुशलता सुनिश्चित करके उत्पादन में वृद्धि करके मूल्य को नियन्त्रित कर सकती है।

(ii) लाभ वितरण पर प्रतिबन्ध - सरकार लाभ वितरण को प्रतिबन्धित करके हिस्सेदारों का उपभोग व्यय कम कर सकती है। इससे एक सीमा तक मुद्रा प्रसार को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(iii) सट्टेबाजी पर नियन्त्रण- सट्टेबाजी भावी सौदों का मूल्य बढ़कर मनोवैज्ञानिक वातावरण उत्पन्न कर देती हैं, जिससे स्फीति का प्रभाव संचयी हो जाता है। सट्टेबाजी पर नियन्त्रण लगाकर स्फीति को एक सीमा तक कम किया जा सकता है।

(iv) मूल्य नियन्त्रण एवं राशनिंग- सरकार आर्थिक नीति के अन्तर्गत

(क) वस्तुओं का अधिकतम मूल्य तय कर सकती है।

(ख) राशनिंग द्वारा माँग को नियन्त्रित कर सकती है।

(ग) मजदूरी की अधिकतम दर तय कर सकती है तथा सरकार आवश्यक व्यवस्था अपने हाथ में ले सकती है।

(v) आयात प्रोत्साहन- वस्तुओं तथा सेवाओं में वृद्धि करने के लिए सरकार आयातों का प्रोत्साहित कर सकती है तथा निर्यातों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(vi) मजदूरी नीति - मजदूरियों में वृद्धि लागत को बढ़ाकर स्फीतिक प्रभाव उत्पन्न करती है और कीमत वृद्धि पुनः मजदूरी वृद्धि को प्रोत्साहित करती है तथा यह क्रम चलता रहता है। उचित मजदूरी नीति के द्वारा इस चक्र को नियन्त्रित किया जा सकता है।

2.4 अभ्यास प्रश्न

1. मुद्रा स्फीति से क्या अर्थ है?
2. आंशिक स्फीति किसे कहते हैं?
3. माँग प्रेरित स्फीति क्या है?
4. लागत प्रेरित स्फीति क्या है?
5. मुद्रा स्फीति के दो प्रमुख कारण बताइये?
6. मुद्रा स्फीति का ऋणी तथा ऋणदाता पर क्या प्रभाव पड़ता है?
7. मुद्रा स्फीति नियन्त्रण के मौद्रिक उपाय बताइये?
8. मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के राजकोषीय उपाय बताइये?

निम्नलिखित कथन सही है या गलत:

1. स्फीति की दशा में मुद्रा का मूल्य बढ़ता है तथा वस्तु का मूल्य घटता है।
2. स्फीति ऋणदाताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
3. स्फीति रोकने के मुद्रा की पूर्ति करनी चाहिए।
4. आंशिक स्फीति पूर्ण रोजगार के पहले होती है।

5. शुद्ध स्फीति पूर्ण रोजगार के पहले आती है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. मुद्रा स्फीति का सम्बन्ध .... कीमतों से है। (a ऊँची, b बढ़ती) हुई।
2. स्फीतिक अन्तराल का कारण माँग की तुलना में पूर्ति का .... होना है। (a अधिक, b कम)
3. लागत प्रेरित स्फीति में माँग .... (a घटती है, b स्थिररहती है)
4. मुद्रा स्फीति का .... पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। (a ऋणी b ऋणदाता)
5. मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के लिए .... मुद्रा नीति अपनानी चाहिए (a सस्ती, b महँगी)

2.5 सारांश

मुद्रा स्फीति कीमतों में सतत् वृद्धि को कहते हैं। जब वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा कम होती है और बाजार में क्रय शक्ति अधिक होती है तब मुद्रा स्फीति उत्पन्न होती है। कींस ने कहा कि पूर्ण रोजगार के बाद ही पूर्ण स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती। पूर्ण रोजगार के पहले मूल्य में वृद्धि उत्पादन तथा रोजगार को बढ़ाती है इसलिए इसे अर्द्ध स्फीति कहा जाता है।

मुद्रा स्फीति को अनेक कारण प्रभावित करते हैं, जिन्हें दो भागों में व्यक्त किया जा सकता है-

माँग प्रेरित स्फीति - जब कीमतों में वृद्धि अतिरिक्त माँग के कारण होती है।

लागत प्रेरित स्फीति - जब कीमतों में वृद्धि उत्पादन लागत बढ़ने के कारण होती है।

माँग प्रेरित स्फीति में स्फीति माँग पक्ष में उत्पन्न होती है तथा लागत प्रेरित स्फीति में स्फीति पूर्ति पक्ष से प्रारम्भ होती है। कारण चाहे जो भी हो परन्तु बाद में मिश्रित प्रभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं।

मुद्रा स्फीति से उत्पादकों, व्यापारियों, सट्टेबाजों तथा ऋणी वर्ग को लाभ होता है। जिनकी आय स्थिर रहती है, उन्हें हानि होती है। लागते बढ़ती हैं, परन्तु कीमत और मजदूरी की दौड़ में मजदूरियाँ सदैव पीछे रह जाती है।

मुद्रा स्फीति को मौद्रिक उपायों- बैंक दर में वृद्धि, न्यूनतम आरक्षित अनुपात में वृद्धि तथा प्रतिभूतियों की बिक्री आदि के द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है। सरकार राजकोषीय उपाय जैसे- कर में वृद्धि, व्यय में कमी तथा ऋणों में वृद्धि करके स्फीति को रोकने का प्रयास करती है। इसके अलावा सरकार प्रत्यक्ष उपाय द्वारा भी स्फीति को नियन्त्रित करने का प्रयास करती है। प्रत्यक्ष उपाय मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के पूरक है।

2.6 शब्दावली

- **माँग प्रेरित स्फीति (Demand Pull Inflation)-** समग्र माँग का उत्पादन एवं रोजगार से अधिक होने पर होने वाली स्फीति
- **लागत प्रेरित स्फीति (Cost-Push Inflation)-** कच्चे माल की कीमत बढ़ने, मजदूरी में वृद्धि तथा लाभ की गुंजाइश बढ़ने से लागत में वृद्धि से होने वाली स्फीति
- **बैंक दर (Bank Rate)-** ब्याज की वह दर जो केन्द्रीय बैंक व्यवसायिक बैंकों से वसूल करता है।
- **खुले बाजार की क्रियाएँ (Open Market Operations)-** प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को खुले बाजार की क्रियाएँ कहते हैं।
- **घाटे की वित्ता व्यवस्था (Deficit Financing)-** अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा नोट का निर्गमन घाटे की वित्त व्यवस्था कहलाता है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथन सही है या गलत:

उत्तर-1 गलत, 2 सही, 3 सही, 4 सही, 5 गलत।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

उत्तर-1 b, 2 b, 3 a, 4 a, 5 b।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade'*, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics'*, Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. *''किसी वस्तु की माँग समस्त पूर्ति से अधिक होना ही मुद्रा स्फीति है।''* इस कथन की व्याख्या कीजिए और मुद्रा स्फीति के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. मुद्रा स्फीति के आर्थिक प्रभावों की व्याख्या कीजिए। स्फीतिक दबावों को रोकने के लिए आप कौन से सुझाव बतायेंगे।
3. माँग प्रेरित तथा लागत प्रेरित स्फीति में अन्तर कीजिए, सिद्ध कीजिए कि मुद्रा स्फीति एक मिश्रित स्फीति है।
4. मुद्रा स्फीति केवल विकसित देशों की समस्या है, इस कथन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

इकाई 3 : मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी
(UNIT 3 : INFLATION AND UNEMPLOYMENT)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी
    3.3.1 स्फीति और बेरोजगारी की व्याख्या फिलिप्स वक्र द्वारा
    3.3.2 फिलिप्स वक्र की वैधानिकता
3.4 अभ्यास प्रश्न
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

कींस केसिद्धान्त में आपने देखा कि पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त होने के बाद समग्र पूर्ति रेखा लम्बवत हो जाती है। ऐसी दशा में राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों में विस्तारवादी परिवर्तन केवल मूल्यों में वृद्धि करता है न कि रोजगार में।

चूंकि मजदूरी की लागत (आपने लागत वृद्धि स्फीति में देखा है) कीमत संरचना में महती भूमिका अदा करती है, इसलिए पूर्ति विश्लेषण में दिलचस्पी रखने वाले अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी की दर में वृद्धि तथा बेरोजगारी की दर के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस सम्बन्ध की सर्वमान्य व्याख्या फिलिप्स ने प्रस्तुत की। वर्तमान अध्याय में आप फिलिप्स की व्याख्या का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

पिछले अध्याय में आपको स्फीति के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया गया। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य आप के अन्दर स्फीति और बरोजगारी के सम्बन्ध की समझ पैदा करने का प्रयास है। इस अध्याय में आपको -

- ✓ स्फीति की और व्यापक समझ पैदा होगी।
- ✓ बेरोजगारी की विस्तृत समझ आयेगी
- ✓ स्फीतिक अन्तराल की धारणा को स्पष्ट करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के विभिन्न सिद्धान्तों/कारणों को स्पष्ट करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के प्रभावों की समझ उत्पन्न करना।
- ✓ मुद्रा स्फीति के नियन्त्रण के तरीकों से परिचित कराना।

3.3 मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी

3.3.1 स्फीति और बेरोजगारी की व्याख्या फिलिप्स वक्र द्वारा (Analaysis of Inflation and Unemployment through Philips Curve)

आप जानते हैं कि प्रायः सभी अर्थव्यवस्थाओं के सामने स्फीति और बेरोजगारी दो बड़ी समस्याएँ हैं। फिलिप्स ने स्पष्ट कहा कि यदि बेरोजगारी दूर करना चाहते हैं तो स्फीति को, और यदि स्फीति खत्म करना चाहते हैं तो बेरोजगारी को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ेगा। इसका अभिप्राय यह है कि दोनों का एक स्वीकार्य स्तर निर्धारित करना पड़ेगा।

1950 में माँग प्रेरित स्फीति तथा लागत प्रेरित स्फीति अर्थशास्त्रियों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ था, उसी समय लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के अर्थशास्त्री **ए.डब्ल्यू.फिलिप्स** ने *"The Relation Between Unemployment and the Rate of Change in Money Wage Rates in United Kingdom in 1861-1957 (Economica- Nov. 1958)"* शोध-पत्र का प्रकाशन किया।

फिलिप्स ने 1861 से 1957 के मध्य ब्रिटेन में होने वाले बेरोजगारी की दर में प्रतिशत परिवर्तन तथा मौद्रिक मजदूरी की दरों में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से सम्बन्धित आँकड़ों का विश्लेषण किया। इस विश्लेषण को रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया, जो फिलिप्स वक्र के नाम से आर्थिक जगत में विख्यात हुआ।

फिलिप्स के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य इस बात की व्याख्या करना था कि-

1. अध्ययन काल के दौरान ब्रिटेन में लागत प्रेरित और माँग प्रेरित स्फीति में कौन अधिक प्रभावशाली रही तथा
2. यह निर्धारित करना था कि किस सीमा तक नियन्त्रित मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियाँ स्फीति के नियन्त्रण में अधिक सफल हो सकती है।

फिलिप वक्र को चित्र संख्या-1 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है-

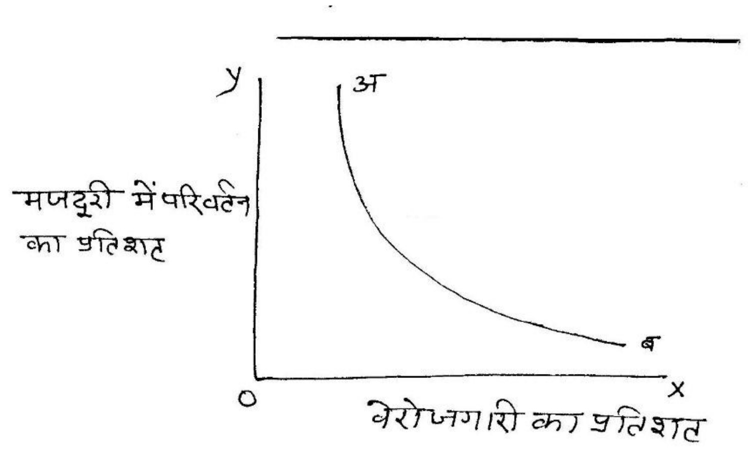

उपर्युक्त चित्र में X अक्ष पर बेरोजगारी का प्रतिशत तथा Y अक्ष पर मजदूरी में परिवर्तन का प्रतिशत प्रदर्शित किया गया है।

चित्र से स्पष्ट है कि मजदूरी में परिवर्तन का प्रतिशत (मजदूरी प्रेरित स्फीति) तथा बेरोजगारी का प्रतिशत के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। फिलिप्स वक्र अ, ब द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

1. मुद्रा स्फीति एवं बेरोजगारी दोनों साथ-साथ पाये जा सकते हैं।
2. जिस समय काल का फिलिप्स ने अध्ययन किया, उस दौरान लागत प्रेरित तत्वों की अपेक्षा माँग प्रेरित तत्वों का प्रभाव अधिक रहा।
3. फिलिप्स ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि नियन्त्रित मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां माँग प्रेरित स्फीति को नियन्त्रित कर सकती है परन्तु लागत प्रेरित स्फीति को नियन्त्रित करने में असफल रहती है।

अतः स्पष्ट हे कि समाज में मूल्य स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बेरोजगारी के दंश को बर्दाश्त करना ही पड़ेगा।

3.3.2 फिलिप्स वक्र की वैधानिकता

इस भाग में आप जानेंगे कि क्या फिलिप्स वक्र एक अनिवार्य सत्य है? अनुभव पर आधारित अध्ययन इसके सर्वमान्य एवं सर्वकालिक होने पर प्रश्न चिह्न खड़ा करते हैं। 1950-60 के दौरान यू.एस.ए. की अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से फिलिप वक्र का अनुपालन करती है। बेरोजगारी के प्रतिशत में प्रत्येक एक बिन्दु की कमी के परिणामस्वरूप मौद्रिक मजदूरी की दर में 3/4 बिन्दु की वृद्धि हुई।

परन्तु 1970 में अमेरिका की आर्थिक स्थिति की व्याख्या करने में फिलिप वक्र असफल हो गया। उस समय स्टैगफ्लेशन की वह अप्रत्याशित अवस्था उत्पन्न हुई, जब उच्च स्फीति (High Inflation) और उच्च बेरोजगारी (High Unemployment) दोनों एक साथ अनुभव किया गया।

स्टैगफ्लेशन की व्याख्या करने में कींस का सिद्धान्त तथा फिलिप्स का सिद्धान्त दोनों ही असफल हो गये। मिल्टन फ्रीडमैन ने फिलिप वक्र को चुनौती दी तथा स्टैगफ्लेशन की अवस्था को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया। उनके अनुसार केवल अल्पकाल में नीचे की ओर गिरता हुआ फिलिप वक्र पाया जाता है परन्तु यह स्थिर नहीं रहता है यह प्रायः बायें अथवा दायें खिसकता रहता है। फ्रीडमैन ने कहा कि अर्थव्यवस्था का दीर्घकालीन सन्तुलन बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पर होता है। अर्थात् दीर्घकाल में स्फीति और बेरोजगारी के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं होता है बल्कि फिलिप्स वक्र ग अक्ष पर एक लम्बवत् रेखा होती है। इसे चित्र संख्या-2 में व्यक्त किया गया है

बेरोजगारी की प्राकृतिक दर वह दर है जिस पर उपलब्ध रोजगार के अवसर तथा श्रम बाजार में बेरोजगारों की संख्या दोनों बराबर होती है। यदि स्फीति की वास्तविक दर प्रत्याशित दर से अधिक होती है, तब अल्पकाल में बेरोजगारी, प्राकृतिक दर से नीचे आ सकती है परन्तु दीर्घकाल में पुनः बेरोजगारी की प्राकृतिक दर स्थापित हो जायेगी।

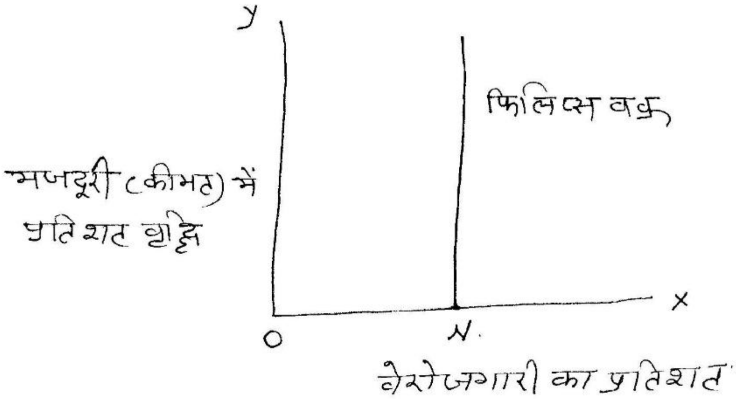

फ्रीडमैन यह स्वीकार करता है कि कीमत और मजदूरी की दौड़ में मजदूरी सदैव पीछे रह जाती है, जिससे व्यावसायिक लाभ में वृद्धि होती है और उत्पादन तथा रोजगार बढ़ता है। यही कारण है कि अल्पकाल में बेरोजगारी प्राकृतिक दर से नीचे आ जाती है। इसी व्याख्या के आधार पर हाल में नवीन समष्टि अर्थशास्त्र में विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त (Rational Expectation Theory) विकसित किया गया। इस व्याख्या में यह मान लिया गया कि कीमत और मजदूरी के बीच समायोजन में कोई समय अन्तराल नहीं पाया जाता है, इसलिए कीमत तथा मजदूरी के बीच ट्रेड ऑफ व्यक्त करने वाला कोई फिलिप्स वक्र अस्तित्व में नहीं पाया जाता है। कुल माँग में वृद्धि से बेरोजगारी की दर में कोई कमी नहीं होती है।

इस व्याख्या से आप समझ गये होंगे कि विवेकपपूर्ण प्रत्याशा के सिद्धान्त के अनुसार कुल पूर्ति रेखा पूर्ण रोजगार के स्तर पर एक लम्बवत रेखा होती है। इसका अभिप्राय यह है कि कीमत और स्फीति के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं पाया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि नीचे की ओर गिरते हुए फिलिप्स वक्र का अस्तित्व ही संदिग्ध है।

3.4 अभ्यास प्रश्न

1. फिलिप्स वक्र क्या है?
2. स्टैगफ्लेशन समझाइए?

3. विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त क्या है?

4. फिलिप्स वक्र निम्न के बीच सम्बन्ध बताता है-
   I. स्फीति और रोजगार
   II. मजदूरी की दर तथा बेरोजगारी
   III. कर की दर तथा कर आय
   IV. सार्वजनिक आय एवं व्यय

5. ऊँची कीमत तथा ऊँची बेरोजगारी के सह-अस्तित्व को कहते हैं-
   I. स्फीति
   II. अवस्फीति
   III. अपस्फीति
   IV. स्टैगफ्लेशन

6. स्टैगफ्लेशन तब पाया जाता है जब -
   I. समग्र पूर्ति रेखा नीचे की ओर गिरती हुई हो।
   II. समग्र पूर्ति रेखा उपर की ओर उठती हुई हो।
   III. माँग रेखा उपर की ओर उठती हुई हो।
   IV. समग्र माँग रेखा नीचे की ओर गिरती हुई हो।

3.5 सारांश

स्फीति और बेरोजगारी दोनों ही विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्याएँ हैं। फिलिप्स ने अनुभव पर आधारित अध्ययन का सहारा लेकर यह स्पष्ट किया कि स्फीति और बेरोजगारी के मध्य विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। इसे व्यक्त करने के लिए फिलिप्स वक्र का प्रयोग किया। फ्रीडमैन ने कहा कि फिलिप्स वक्र अल्प काल में तो सक्रिय रहता है परन्तु दीर्घकाल में यह लम्बवत् हो जाता है जिससे ट्रेड ऑफ का प्रश्न ही नहीं उठता है। आगे चलकर नवीन समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत विवेकपूर्ण प्रत्याशा का सिद्धान्त विकसित किया गया, जिसके अनुसार पूर्ण रोजगार के स्तर पर समग्र पूर्ति रेखा एक लम्बवत रेखा होती है। इसका अभिप्राय यह है कि कीमत और स्फीति के बीच कोई ट्रेड ऑफ नहीं होता है और नीचे गिरते हुए फिलिप्स वक्र का अस्तित्व संदेहास्पद है।

3.6 शब्दावली

- **फिलिप्स वक्र (Philips Curve)-** कीमत और बेरोजगारी के मध्य ट्रेड ऑफ व्यक्त करने वाला वक्र।
- **बेरोजगारी की प्राकृतिक दर (Natural Rate of Unemployment)-** वह दर जिस पर बेरोजगारों की संख्या और उपलब्ध रोजगारों के अवसर दोनों बराबर होते हैं।
- **स्टैगफ्लेशन (Stagflation)-** ऊँची कीमत तथा ऊँची बेरोजगारी का सह-अस्तित्व।
- **मौद्रिक नीति (Monetary Policy)-** आर्थिक स्थिति को नियमन करने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रयोग की जाने वाली नीतियाँ।
- **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)-** आर्थिक स्थिति के नियमन के लिए सरकार द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपाय।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- 4 (I), 5 (IV), 6 (II)

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade*', Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics*', Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics*' – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फिलिप्स वक्र स्फीति और बेरोजगारी के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करता है। इस कथन को विस्तार से समझाइये।
2. फिलिप्स वक्र की वैधानिकता पर एक निबन्ध लिखिए।
3. फिलिप्स वक्र की उत्पत्ति का ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखिए।

इकाई 4 : मौद्रिक नीति के यन्त्र
(UNIT 4 : TOOLS OF MONETARY POLICY)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मौद्रिक नीति के यन्त्र
4.3.1. मौद्रिक नीति
4.3.2. मौद्रिक नीति का उद्देश्य
4.3.3. मौद्रिक नीति के मुख्य यन्त्र
4.4 अभ्यास प्रश्न
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति का नाम सुना है। वर्तमान अध्याय मौद्रिक नीति के कुछ खास पहलुओं पर प्रकाश डालेगा। मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति तथा ऋण प्रबन्धन संयुक्त रूप से किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक नीति का निर्धारण करते हैं। "जनरल थियरी (General Theory)" (1936) के प्रकाशन के पहले समष्टि आर्थिक नीति के रूप में मौद्रिक नीति ही प्रभावपूर्ण तरीके से विद्यमान थी। मुख्य आर्थिक एवं गैर आर्थिक उद्देश्य जैसे- पूर्णरोजगार, मूल्य स्थिरता, आर्थिक विकास, ब्याज दर की लोचशीलता, भुगतान सन्तुलन तथा मजदूरी का नियमन आदि को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति का सहारा लिया जाता रहा है। **जे.बी. से** के बाजार नियम के अनुसार- *"पूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है"* जिससे बाजार में सदैव पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। न तो माँग की अधिकता होती है न ही पूर्ति की। यह भी विश्वास था कि यदि फौरी, तौर पर असन्तुलन पाया भी जाता है तो बाजार की शक्तियाँ (माँग और पूर्ति) स्वयं समायोजन कर लेती हैं परन्तु 1929 की महा मन्दी ने यह भ्रम चकनाचूर कर दिया। बाजार की शक्तियां तथा मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने में असमर्थ रहे। इसी समय जॉन मेनार्ड कींस ने राजकोषीय नीति का विकल्प प्रस्तुत कर सरकार के हस्तक्षेप की अपरिहार्यता को सुनिश्चित किया।

धीरे-धीरे सरकार का स्वरूप पहरेदार से बदलकर कल्याणकारी राज्य का हो गया। एक समय था जब सरकार का कोई भी हस्तक्षेप जनता पर अत्याचार करने के समान था जबकि आज पालने से लेकर (पोलियो ड्राप पिलाने) कब्र तक की जिम्मेदारी कल्याणकारी राज्य की हो गयी।

4.2 उद्देश्य

वर्तमान अध्याय का उद्देश्य आपके अन्दर निम्नलिखित की समझ पैदा करना है-

- ✓ मौद्रिक नीति क्या है।
- ✓ मौद्रिक नीति के विभिन्न यन्त्र कौन हैं?
- ✓ मौद्रिक नीति आर्थिक नीति का एक अंग है।
- ✓ विभिन्न यन्त्रों के सापेक्षित गुण-दोष की पहचान।
- ✓ मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता को समझना।

4.3 मौद्रिक नीति के यन्त्र -

4.3.1. मौद्रिक नीति

सीधे और सरल शब्दों में किसी देश के केन्द्रीय बैंक (वह बैंक जो सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था का नियमन करता है अर्थात् जो बैंकों का बैंक होता है) द्वारा अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने (पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने, मूल्य स्थिरता को बनाये रखने, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने तथा जन सामान्य को सम्मानजनक जीवन सतर प्रदान करने) तथा अवांछनीय प्रभाव (बेरोजगारी को कम करना, स्फीति तथा अवस्फीति को दूर करना तथा भुगतान सन्तुलन के असाम्य को ठीक करना) को कम करने के लिए अपनायी जाने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।

संकीर्ण अर्थों में मौद्रिक नीति से आशय केन्द्रीय बैंक तथा सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली उस नीति से है, जिसके द्वारा मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन किया जाता है। ताकि ब्याज दर को

प्रभावित करके बाजार में कुल माँग और कुल पूर्ति को संयमित किया जा सके। परन्तु व्यापक अर्थ में गैर मौद्रिक उपायों जैसे- मजदूरी तथा कीमतों पर नियन्त्रण एवं बजटीय क्रियाओं को भी मौद्रिक नीति में शामिल किया जाता है।

आर.पी. केन्ट के अनुसार - मौद्रिक नीति, स्पष्ट रूप से निर्धारित पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रचलन में मुद्रा की यात्रा का विस्तार एवं संकुलचन करने, के प्रबन्ध का नाम है।

एच.जी. जॉनसन के अनुसार - मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी मौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य चाहे मौद्रिक हो या अमौद्रिक तथा वे सभी अमौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य मौद्रिक हैं। निश्चित रूप से यह परिभाषा बहुत व्यापक है परन्तु मौद्रिक नीति के विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत सहायक नहीं है।

4.3.2. मौद्रिक नीति का उद्देश्य

आप जान गये हैं कि मौद्रिक नीति आर्थिक नीति का एक अंग है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को समग्र आर्थिक उद्देश्य का ही एक भाग माना जाना चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक परम्परागत मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर तथा मूल्य स्तर को स्थिरता प्रदान करना था।

रेडक्लिफ समिति ने खासकर विकसित देशों के लिए मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य बताये-

1. उच्चतम एवं स्थिर रोजगार का स्तर।
2. उचित मूल्य स्थिरता ताकि मुद्रा का आन्तरिक मूल्य सम्मानजनक स्तर पर बना रहे।
3. सतत् आर्थिक विकास ताकि आय के स्तर में वृद्धि हो सके और राष्ट्र के जीवन स्तर में सुधार हो सके।
4. अर्थव्यवस्था के बहिर्मुखी विकास हेतु भुगतान सन्तुलन को नियमित करना।
5. विनिमय दर को स्थिरता प्रदान करना तथा विदेशी विनिमय कोष को मजबूत करना।

यद्यपि कि मौद्रिक नीति के उपर्युक्त उद्देश्य बताये गये। परन्तु समय-समय पर बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के कारण मौद्रिक नीति के उद्देश्य तथा उनकी प्राथमिकताएँ बदलती रही हैं। सामान्य तौर पर मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये गये हैं।

1. मुद्रा की उदासीनता (Neutrality of Money)
2. विनिमय दर स्थिरता (Exchange Rate Stability)
3. कीमत स्थिरता (Price Stability)
4. पूर्ण रोजगार और (Full Employment)
5. आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)

1. मुद्रा की उदासीनता (Neutrality of Money)- वीकस्टीड, हायक तथा राबर्टसन का मानना है कि सर्वश्रेष्ठ मौद्रिक नीति वह है जो मुद्रा को पूर्णतया उदासीन बनाये रखे। अर्थात् मुद्रा की भूमिका अर्थव्यवस्था के संचालन में मात्र एक निष्क्रिय साधन की रहे। मुद्रा को अर्थव्यवस्था के संचालन में बिना कोई अव्यवस्था उत्पन्न किये, केवल विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करना चाहिए। मुद्रा की उदासीनता के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि मुद्रा की मात्रा प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रखी जाय। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार-मुद्रा एक तकनीकी यन्त्र है जो अर्थव्यवस्था के संचालन में निष्क्रिय भूमिका अदा करती है। इसका मुख्य उद्देश्य केवल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुचारु रूपेण संचालन में सहयोग प्रदान करना है। संचय की प्रवृत्ति तथा संचलन वेग के मद्देनजर मुद्रा की मात्रा को स्थिर बनाये रखने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था में होने वाले आधारभूत

परिवर्तनों जैसे - जनसंख्या में परिवर्तन, उत्पादन तकनीक में परिवर्तन तथा नवप्रवर्तन आदि को अप्रभावी करने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन में आवश्यक होता है। अतः यदि मुद्रा की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन नहीं किया गया तो यह अपने मुख्य गुण उदासीनता का पालन करने में असमर्थ रहेगी।

आलोचना -

अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा की उदासीनता का निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की।

मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा समय के साथ अपना महत्व खो चुके मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर आधारित है इसलिए यह भी महत्वहीन है।

1- उदासीनता कीमत स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि मुद्रा की मात्रा स्थिर रखी जाय तो यह केवल अवस्फीतिक दशाएँ उत्पन्न करेगी, जिससे कीमतों में गिरावट आयेगी।
2- मन्दी के दौरान उदासीन मुद्रा नीति अप्रभावी रहती है। अतः इस अवधि में इसका अनुपालन नहीं किया जा सकता है।
3- मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा स्वयं में विरोधाभासी है। एक तरफ यह मुद्रा के निष्क्रिय स्वरूप को स्वीकार करके अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन करता है दूसरी तरफ आधारभूत परिवर्तनों के अनुरूप मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन की वकालत भी करता है। दोनों एक साथ कैसे सम्भव है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका एक सक्रिय यन्त्र की है। मुद्रा की उदासीनता व्यावसायिक उच्चावचनों को नियन्त्रित करने में असफल है।

2 . विनिमय दर स्थिरता (Exchange Rate Stability) - विनिमय दर की स्थिरता तथा स्वर्णमान युग को यदि एक-दूसरे का पर्याय कहा जाय तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। भुगतान सन्तुलन के अनुकूल होने पर बाहर से स्वर्ण देश में आने लगता है। ऐसे में मौद्रिक सत्ता करेंसी तथा साख में विस्तार करके आन्तरिक मूल्यों में वृद्धि कर देती है, परिणामस्वरूप देश के भीतर वेदना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के आगमन को प्रतिबन्धित करके विनिमय दर की स्थिरता को बनाये रखा जाता है। इसी प्रकार भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने पर जब स्वर्ण का निर्यात प्रारम्भ हो जाता है तब करेंसी तथा साख की मात्रा में संकुचन करके आन्तरिक मूल्य को कम कर दिया जाता है जिससे वस्तुओं का बाहरी बाजार में वेचना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के निर्यात को नियन्त्रित करके विनिमय दर को स्थिर बनाये रखा जाता है।

तीस के दशक में यूरोपीय देशों से स्वर्णमान लगभग उन्मूलन हो गया, साथ ही स्थायी विनिमय दर भी बीते दिनों की बात हो गयी। पत्र मुद्रा के वर्तमान युग में विनिमय दर की स्थिरता विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं के सामने एक मुख्य चुनौती है। अब तो यहाँ तक कहा जाने लगा है कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर को स्थिर बनाये रखना है। आप जानते हैं कि विनिमय दर वह दर है जिस पर दो देशों की मुद्राओं का आपस में लेन-देन होता है। विनिमय दर की अस्थिरता मुख्य रूप से निम्न समस्याएँ उत्पन्न करती हैं-

1- विनिमय दर में बड़े पैमाने पर पायी जाने वाली अस्थिरता मुद्रा बाजार में सट्टा कार्य को बढ़ावा देती है।

2- यह विदेशी निवेशकों के मन में डर एवं अविश्वास उत्पन्न कर देता है, जिससे देश में विदेशी विनियोग तथा पूँजी निर्माण की दर बुरी तरह प्रभावित हो सकती है तथा विदेश अपनी पूँजी अपने देश वापस ले जा सकते हैं।

यह सम्बन्धित देश में बड़े पैमाने पर आन्तरिक कीमत स्थिरता को नुकसान पहुँचा सकती है।

आलोचना –

विनिमय दर की स्थिरता की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1- आपने देखा की स्वर्णमान में विनिमय दर की स्थिरता आन्तरिक मूल्यों के उतार-चढ़ाव की लागत पर प्राप्त की जाती है। आन्तरिक मूल्यों में हिंसक अस्थिरता आर्थिक प्रगति को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है।

2- विनिमय दर की स्थिरता का एक दुष्परिणाम यह है कि विदेश में होने वाली कोई भी आर्थिक हलचल सरलतापूर्णक सम्बन्धित देश में हस्तान्तरित हो जाती है।

आप जानते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना की गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य सदस्यों के बीच विनिमय दर की स्थिरता को बनाये रखना है। परिणामस्वरूप सदस्य देशों के लिए मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता न होकर पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक विकास है। 1973 में डालर के अवमूल्यन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था समाप्त हो गयी और विश्व अर्थव्यवस्था एक बार पुनः परिवर्तनशील विनिमय दर के हवाले हो गयी। इसका अभिप्राय यह है कि विनिमय दर की स्थिरता अभी भी मौद्रिक नीति की अनिवार्य अतिरिक्त जिम्मेदारी है। मुद्रा कोष द्वारा स्थापित बहुपक्षीय व्यापारी प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होने पर भी सदस्य देश व्यापारिक कार्य जारी रख सकते हैं।

3. पूर्ण रोजगार (Full Employment) - आपने देखा की विभिन्न कारणों से मुद्रा की उदासीनता तथा विनिमय दर की स्थिरता मौद्रिक नीति के बहुत महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं रहे। किंस ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक '*जनरल थियरी ऑफ़ इम्पालयमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी (The General Theory of Employment Interest and Money)*' में स्पष्ट किया कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना होना चाहिए। पूर्ण रोजगार की दशा में ही संसाधनों का अधिकतम एवं उत्पादक प्रयोग किया जा सकता है जो अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को प्रापत करने के लिए अनिवार्य है। प्रो. जी.एन. हॉम ने भी कींस की इस विचारधारा का समर्थन किया। यद्यपि पूर्ण रोजगार की अवधारणा अपने आप में विवाद का विषय है। डब्ल्यू.डब्ल्यू.हार्ट के अनुसार पूर्ण रोजगार को परिभाषित करने का प्रयास करना बहुत लोगों का रक्तचाप बढ़ाने जैसा है। पूर्ण रोजगार का मतलब यह कतई नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जो स्वस्थ और कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है उसे वर्तमान मजदूरी की दर तक उत्पादक कार्य करने का अवसर उपलब्ध है। वास्तव में पूर्ण रोजगार के साथ मौसमी तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी पायी जा सकती है।

मौद्रिक नीति द्वारा कैसे पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है-

आप जानते हें कि कींस के अर्थशास्त्र में आय का समीकरण $Y = C+I$ है। आय बढ़ने के लिए (आपको पता है कि कींस के अर्थशास्त्र में - राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार तथा प्रभावपूर्ण माँग सब एक ही है) कुल व्यय (उपभोग व्यय तथा विनिमय व्यय) का बढ़ना आवश्यक है। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति लगभग स्थिर रहती है इसलिए मौद्रिक नीति को पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्रापत करने के लिए विनिमय पर केन्द्रित होना चाहिए। सरकार मन्दी के दौरान निजी निवेशकों

को प्रोत्साहित करने के लिए सस्ती मुद्रा नीति लागू करनी चाहिए ताकि निम्न ब्याज दर से आकर्षित होकर निवेशक विनियोग के प्रति व्याप्त निराशा से बाहर आ सके। परन्तु सस्ती मुद्रा नीति को पूर्ण रोजगार बिन्दु के बाद महँगी मुद्रा नीति से विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह अतिस्फीति को जन्म देगी। ऐसी दशा में स्थिर कीमत स्तर नीति को अपनाया जाना चाहिए। पूर्ण रोजगार का उद्देश्य इसलिए सर्वोत्तम है क्योंकि मौद्रिक नीति के अन्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता तथा कीमत स्थिरता अपने आप ही इसमें शामिल हो जाते हैं। मौद्रिक सत्ता को चाहिए कि वह प्रत्येक दशा में पूर्ण रोजगार के सतर पर बचत तथा विनियोग में समानता कायम रखे।

4. आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) – हाल के वर्षों तक पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति का आदर्श उद्देश्य माना जाता रहा है। परन्तु अब इसका स्थान आर्थिक संवृद्धि ने ले लिया है। विकसित तथा विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की प्राथमिकता आर्थिक संवृद्धि को सुनिश्चित करना हो गया है क्योंकि -

1- किसी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को तीव्र आर्थिक विकास की दर के बगैर प्राप्त करना सम्भव नहीं है।
2- तेजी से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताएँ तथा उनकी विविध रुचियों को बिना तीव्र आर्थिक संवृद्धि के पूरा करना सम्भव नहीं है तथा
3- आज के इस अन्तर्राष्ट्रीय गला घोंट प्रतिस्पर्धा के दौर में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए सतत् एवं तीव्र वृद्धि विकासशील देशों के लिए जीने मरने का प्रश्न है।

यू.एस.ए. ने रोजगार अधिनियम, 1946 में यह घोषणा की कि न केवल अधिकतम रोजगार बल्कि अधिकतम उत्पादन को भी सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाये जायें। उपर्युक्त कारणों से आर्थिक संवृद्धि हाल के वर्षों में मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य बन गया।

यद्यपि कि प्रो. एलिस के अनुसार विकासशील देशों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के लिए मौद्रिक नीति के द्वारा किया जाने वाला कोई भी प्रयास स्फीतिक दशाओं के कारण असफलता ही प्रदान करेगा। परन्तु प्रो. एलिस का यह तर्क बहुत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि विकासशील देश उपयुक्त नियामक नीति का प्रयोग करके स्फीतिक दशाओं को नियन्त्रित कर सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि आर्थिक संवृद्धि क्या है? और तीव्र आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य को प्रापत करने में मौद्रिक नीति की क्या भूमिका हो सकती है? सीधे और सरल शब्दों में वास्तविक राष्ट्रीय आय में सतत् वृद्धि को आर्थिक वृद्धि कहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में विद्यमान समस्त संसाधनों, भौतिक एवं मानवीय का पूर्ण एवं उत्पादक प्रयोग हो। यही विकासशील देशों की मुख्य समस्या है, क्योंकि एक बड़ा क्षेत्र अमौद्रिक होने के कारण बड़े पैमाने पर संसाधन अगतिशील बने रहते हैं। अतः कहा जा सकता है कि मुद्रा संसाधनों को गतिशीलता प्रदान करने वाला यन्त्र है। ऐसे में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने से अप्रयुक्त संसाधनों का प्रयोग बढ़ता है जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है जो आर्थिक संवृद्धि को गति प्रदान करता है। इस प्रकार मौद्रिक नीति आर्थिक संवृद्धि में सहायक है। परन्तु मौद्रिक नीति तब लाभकारी होगी जब उसमें निम्न विशेषताएँ हों-

मौद्रिक नीति लोचपूर्ण होनी चाहिए - मुद्रा की समग्र माँग तथा वस्तुओं की समग्र पूर्ति के बीच साम्य बनाये रखने के लिए, मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना अनिवार्य है। यदि मुद्रा की समग्र माँग, वस्तुओं तथा सेवाओं की समग्र पूर्ति से अधिक है तब नियन्त्रित मौद्रिक नीति के द्वारा करेंसी तथा साख की मात्रा को कम करके स्फीतिक प्रभाव को रोका जा सकता है। इसके विपरीत स्थिति में करेंसी तथा साख की

मात्रा बढ़ाकर अवस्फीति को नियन्त्रित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में आन्तरिक साम्य स्थापित करने के लिए मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना आवश्यक है।

मौद्रिक नीति में पूँजी निर्माण की क्षमता होनी चाहिए, पूँजी निर्माण आर्थिक वृद्धि की प्रमुख शर्त है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो न केवल घरेलू विनिमय बल्कि विदेशी विनियोग के लिए भी उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करें। इसके लिए आवश्यक है कि आन्तरिक कीमत स्तर स्थिर रहे। क्योंकि इसमें अस्थिरता घरेलू तथा विदेशी दोनों विनियोजकों के अन्दर भय और संशय की स्थिति उत्पन्न करता है जो विनियोग तथा पूँजी निर्माण के लिए ठीक नहीं है।

आर्थिक वृद्धि मौद्रिक नीति का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य हो सकता है क्योंकि अन्य उद्देश्य जैसे- पूर्ण रोजगार, विनिमय दर तथा मूल्य स्तर की स्थिरता आदि इसमें अपने आप सम्मिलित हो जाते हैं।

ऊपर आपने मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों का विस्तार से अध्ययन किया परन्तु कौन-सा उद्देश्य सर्वश्रेष्ठ है, यह विवाद का विषय बना हुआ है। अर्थशास्त्री काफी हद तक इस बात से सहमत हैं कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूर्ण रोजगार एवं स्थिरता तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक विकास मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

4.3.3 मौद्रिक नीति के मुख्य यन्त्र

अब तक आप जान गये होंगे कि मौद्रिक नीति क्या है? तथा उसके उद्देश्य क्या हैं? अब हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि वे कौन से यन्त्र हैं, जिनका प्रयोग करके सरकार या केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन करते हैं। हम अपनी सुविधा के लिए इन यन्त्रों को दो भागों में बांट लेते हैं-

1. परिमाणात्मक यन्त्र (Quantitative Instruments)
2. गुणात्मक यन्त्र (Qualitative Instruments)

I. परिमाणात्मक यन्त्र (Quantitative Instruments)

वे यन्त्र जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बिना किसी भेदभाव के प्रभाव डालते हैं, उन्हें परिमाणात्मक यन्त्र कहते हैं। ये निम्नलिखित है-

(अ) बैंक दर नीति (Bank Rate Policy)
(ब) खुले बाजार की क्रियाएँ (Open Market Operation)
(स) नकद रक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio CRR)
(द) संवैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio SLR)

II. चयनात्मक या गुणात्मक यन्त्र (Qualitative Instruments)

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उपाय अपनाये जाते हैं -

(अ) मार्जिन में परिवर्तन (Change in Margin)
(ब) साख की राशनिंग (Rationing of Credit)
(स) सीधी कार्यवाही (Direct Action)
(द) नैतिक दबाव (Moral Suasion)

(अ) बैंक दर नीति (Bank Rate Policy) - बैंक दर वह दर है जिस पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से उधार लेता है। दूसरे शब्दों में यह वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के प्रथम कोटि के व्यापारिक बिलाकें की पुनर्कटौती करता है।

आर.ए. यंग के अनुसार, *'बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों की प्रतिभूतियों की कटौती करता है या उन्हें उधार देता है।'*

यहाँ आप यह समझ लिजिए कि बैंक दर तथा बाजार दर में भिन्नता है। बैंक दर, केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों से लिया जाने वाला ब्याज दर है जबकि ब्याज दर वह दर है जो व्यापारिक बैंक जनता से वसूल करती है।

बैंक दर नीति की क्रियाशीलता - केन्द्रीय बैंक साख के विस्तार अथवा संकुचन के लिए बैंक दर को एक यन्त्र के रूप में प्रयोग करता है।

साख का विस्तार- बाजार तथा व्यापारिक क्रियाकलापों को गति प्रदान करने के लिए केन्द्रीय बैंक साख का विस्तार करता है। इस उद्देश्य से वह बैंक दर को कम कर देता है, जिसके प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है -

बैंक दर में कमी - व्यापारिक बैंकों को कम ब्याज दर ऋण की प्राप्ति - व्यापारियों को कम ब्याज पर ऋण की प्राप्ति - विनियोग में वृद्धि - उत्पादन, मूल्य, रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि।

साख का संकुचन- जब केन्द्रीय बैंक यह अनुभव करता है कि बाजार में साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गयी है और यह स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न कर रही हैं, तब केन्द्रीय बैंक बैंक दर को बढ़ाकर साख की मात्रा को नियमित करने का प्रयास करता है। बैंक दर को कम करने के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

बैंक दर में वृद्धि → व्यापारिक बैंकों को अधिक ब्याज पर ऋण की प्राप्ति → व्यापारितयों को महंगा ऋण → विनियोग में कमी → उत्पादन, मूल्य रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में कमी।

परन्तु बैंक दर तभी प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकती है जब अन्य बातें समान रहें।

- अर्थव्यवस्था पूर्णतया लोचदार होनी चाहिए।
- मुद्रा बाजार की अन्य ब्याज दरें बैंक दर से सम्बद्ध होनी चाहिए।
- काली मुद्रा (Black Money) तथा काली अर्थव्यवस्था (Black Economy) जैसी चीजें नहीं पायी जानी चाहिए।
- व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक पर निर्भर हों तथा
- व्यापारी वर्ग बैंकों पर निर्भर हों।

(ब) खुले बाजार की क्रियाएँ- करेंसी तथा साख को नियमित करने के लिए इस यंत्र का प्रयोग पहली बार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुआ। संकीर्ण अर्थों में खुले बाजार की क्रियाओं से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से है। व्यापक अर्थों में इसके अन्तर्गत योग्य प्रपत्रों तथा निजी क्षेत्रा की प्रतिभूतियों तथा बिलों का क्रय-विक्रय भी सम्मिलित हैं।

साख का विस्तार - केन्द्रीय बैंक यदि अनुभव करता है कि साख का विस्तार होना चाहिए तब वह खुले बाजार में प्रतिभूतियों को क्रय करना प्रारम्भ कर देता है। ऐसा करने पर प्रतिभूति बैंक के पास चली जाती है और नकदी जनता के पास तथा व्यापारिक बैंकों के पास पहुँच जाती है। परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंकों की साख सृजन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

साख का संकुचन - केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम करने के लिए खुले बाजार में प्रतिभूतियों का विक्रय प्रारम्भ कर देता है, जिससे जनता तथा व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा कम हो जाती है और व्यापारिक बैंक भी पहले से कम साख की मात्रा का सृजन कर पाते हैं।

खुले बाजार की क्रियाएँ अर्थव्यवस्था में तब प्रभाव प्रदर्शित कर पाती हैं, जब निम्नलिखित दशाएँ विद्यमान हों -

- प्रतिभूतियों की माँग तथा पूर्ति सदैव एवं पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहनी चाहिए।
- मुद्रा बाजार पूर्ण विकसित होना चाहिए।
- खुले बाजार की क्रियाओं से व्यापारिक बैंकों के कोष प्रभावित होने चाहिए।
- व्यापारिक बैंकों की ऋण नीति अपरिवर्तित रहनी चाहिए।
- ऋणों की माँग यथावत रहनी चाहिए।
- केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों को क्रय तथा विक्रय करने की शक्ति असीमित होनी चाहिए।

(स) नकदरक्षित अनुपात - मौद्रिक नीति के परिमाणात्मक यन्त्रों में यह तीसरा महत्वपूर्ण यन्त्र है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1933 में अमेरिका के फेडरल रिजर्व सिस्टम द्वारा किया गया। प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत कानूनी तौर पर केन्द्रीय बैंक के पास नकद कोष के रूप में जमा करना पड़ता है। इसे वैधानिक न्यूनतम नकद कोष (Statutory Minimum Cash Reserve) कहा जाता है।

केन्द्रीय बैंक न्यूनतम नकद कोष में परिवर्तन करके व्यापारिक बैंकों की साख सृजन क्षमता को नियोजित करता है।

साख का विस्तार - साख का विस्तार करने के लिए केन्द्रीय बैंक नकद रक्षित कोष के प्रतिशत को कम कर देता है। ऐसा करने पर व्यापारिक बैंकों की नकदी की क्षमता बढ़ जाती है तथा अब वे पहले से अधिक साख का सृजन कर सकते हैं, यानी उधार दे सकते हैं।

साख का संकुचन - अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की उधार देने की क्षमता को कम कर देता है। इसके लिए वह नकद रक्षित कोष का प्रतिशत बढ़ा देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा घट जाती है और अब वे पहले से कम उधार देने में समर्थ होते हैं।

आपको यह बात समझातें चलें कि यह नीति तभी फलदायी होगी जब सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाकलाप वैधानिक संरचना के अन्तर्गत सम्पन्न हों।

(द) वैधानिक तरलता अनुपात- बैंकों की तरफ दौड़ को रोकने तथा अपनी विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यापारिक बैंक अपनी तरलता को बनाये रखे। इसी उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक ने यह कानून बना दिया कि प्रत्येक व्यापारिक बैंक अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत अपने पास नकद रूप में रखेंगे। इसी प्रतिशत को वैधानिक तरलता अनुपात कहते हैं।

केन्द्रीय बैंक जब साख का विस्तार करना चाहता है तब तरलता अनुपात को कम कर देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों को उधार देने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब साख की मात्रा कम करनी होती है तब वैधानिक तरलता अनुपात बढ़ा दिया जाता है।

2. गुणात्मक यन्त्र (Qualitative Instrument)

अभी तब आपने उन मौद्रिक यन्त्रों के बारे पढ़ा जो किसी भेदभाव के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। परन्तु व्यवहार में कभी-कभी कुछ खास क्षेत्रों को प्रभावित करने की जरुरत होती है। इसके लिए गुणात्मक यन्त्र, जिसे चयनात्मक यन्त्र भी कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। गुणात्मक यन्त्रों के रूप में निम्नलिखित उपाय अपनाये जाते हैं-

(अ) मार्जिन में परिवर्तन- प्रतिभूतियों के मूल्य तथा उधार की राशि के अन्तर को सीमा कहते हैं। किसी खास क्षेत्र तथा खास मद को प्रभावित करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। सरकार यदि चाहती है कि कृषि क्षेत्र में खासकर दलहन का उत्पादन बढ़े तो वह इसको दिये जाने वाले ऋण के लिए मार्जिन कम कर सकती है। इसी प्रकार यदि विलासिता की वस्तुओं पर व्यय रोकना चाहती है तो उनके लिए मार्जिन बढ़ा सकती है।

(ब) साख की राशनिंग - केन्द्रीय बैंक सर्व अधिकार प्राप्त बैंक है। वह किसी बैंक को दिये जाने वाले उधार की मात्रा निश्चित कर सकता है। किसी बैंक को उधार देने से मना कर सकता है। व्यापारिक बैंकों के लिए साख सृजन करने की अधिकतम मात्रा (कोटा) निश्चित कर सकता है। इस प्रकार वह इच्छानुसार क्षेत्र में साख की मात्रा को नियमित कर सकता है।

(स) सीधी कार्यवाही - व्यापारिक बैंकों के मनमानी करने पर तथा केन्द्रीय बैंक के नियमों का उल्लंघन करने पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के खिलाफ सीधी कार्यवाही कर सकता है। इसके अन्तर्गत वह निम्नलिखित कार्य कर सकता है।

- व्यापारिक बैंकों से अर्थ दण्ड वसूलना।
- व्यापारिक बैंकों तथा किसी खास बैंक को सहयोग न करना।

सीधी कार्यवाही की सफलता के लिए आवश्यक है कि-1. केन्द्रीय बैंक शक्तिशाली हो 2. मुद्रा बाजार में उसका पूरा नियन्त्रण हो तथा 3. अन्य बैंकों के साथ उसका सम्बन्ध सकारात्मक हो।

(द) नैतिक दबाव - केन्द्रीय बैंक के मुखिया की भूमिका में होने के कारण वह सबसे लिए सहज स्वीकार्य है। वह बैंकों को समझा-बुझाकर, अनुरोध करके तथा नैतिक दबाव द्वारा नीतियों का पालन करने के लिए बाध्य कर सकता है। स्फीति की दशा में केन्द्रीय बैंक बैंकों को मना कर सकता है कि वे अधिक ऋण न दें तथा अवस्फीतिकाल में ऋण देने के लिए प्रेरित कर सकता है।

4.4 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य छांटिये -

(क) मौद्रिक नीति केन्द्रीय बैंक द्वारा लागू की जाती है। (सत्य/असत्य)

(ख) मौद्रिक नीति के उद्देश्य विकसित तथा विकासशील देशों के लिए अलग-अलग हैं। (सत्य/असत्य)

(ग) मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति, आर्थिक नीति के ही भाग हैं। (सत्य/असत्य)

(घ) बैंक दर एवं बाजार दर दोनों अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। (सत्य/असत्य)

(च) बैंक दर केन्द्रीय बैंक द्वारा लिया जाने वाला ब्याज है। (सत्य/असत्य)

(छ) न्यूनतम रक्षित अनुपात को SLR कहते हैं। (सत्य/असत्य)

(ज) खुले बाजार की क्रियाएँ, चयनात्मक यन्त्र के अन्तर्गत आती है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) बैंक दर बढ़ने पर साख सृजन की क्षमता .... जाती है। (घट/बढ़)

(ख) व्यापारिक बैंक .... अपने पास रखता है। (CRR/SLR)

(ग) व्यापारिक बैंकों को .... केन्द्रीय बैंक के पास रखना होता है। (CRR/SLR)

(घ) मौद्रिक नीति का सर्वोत्तम उद्देश्य .... है। (पूर्ण रोजगार/ आर्थिक वृद्धि)

4.5 सारांश

हमने देखा कि सरकार केन्द्रीय बैंक से विचार-विमर्श करके मौद्रिक नीति का निर्माण करती है परन्तु उसके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी केन्द्रीय बैंक की होती है। मौद्रिक के सामान्यतः 4 उद्देश्य बताये गये, जिसमें आर्थिक संवृद्धि को सर्वोत्तम माना गया क्योंकि बाकी तीन उद्देश्य इसके साथ अपने आप पूरे हो जाते हैं। अर्थशास्त्रियों में यह सामान्य सहमति है कि विकसित देशों को पूर्ण रोजगार तथा विकासशील देशों को आर्थिक संवृद्धि के लक्ष्य को प्राथमिकता देना चाहिए। आपने देखा कि मौद्रिक नीति के यंत्रों को दो बड़े भागों- परिमाणात्मक तथा गुणात्मक में विभाजित किया जाता है। परिमाणात्मक यन्त्रों के अन्तर्गत - बैंक दर नीति, न्यूनतम रक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया। गुणात्मक यन्त्रों के अन्तर्गत मार्जिन में परिवर्तन, साख की राशनिंग, प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा नैतिक दबाव शामिल हैं।

4.6 शब्दावली

- **मौद्रिक नीति -** करेंसी तथा साख की मात्रा को नियोजित करने वाली नीति
- **केन्द्रीय बैंक -** बैंकों के बैंक को केन्द्रीय बैंक कहते हैं।
- **विनिमय दर -** वह दर जिस पर दो देशों की मुद्राओं की अदला-बदली होती है।
- **मुद्रा की उदासीनता -** इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा अर्थव्यवस्था के संचालन में निष्क्रिय भूमिका अदा करती है।
- **बैंक दर -** वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की प्रतिभूतियों का पुनर्कटौती करता है।
- **न्यूनतमरक्षित अनुपात -** कुल जमा का वह प्रतिशत जो व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है।
- **वैधानिक तरलता अनुपात -** कुल जमा का वह प्रतिशत जो व्यापारिक बैंकों को अपने पास नकद रूप में रखना पड़ता है।
- **खुले बाजार की क्रियाएँ -** केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय को खुले बाजार की क्रियाएँ कहते हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य छांटिये -

(क) सत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) सत्य

(च) सत्य (छ) असत्य (ज) असत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) घट (ख) SLR

(ग) CRR (घ) वृद्धि

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade'*, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics'*, Published by Himalaya Publishing House.

- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 मौद्रिक नीति से आप क्या समझते हैं? मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न-2 मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्य क्या हैं? क्या मौद्रिक नीति उन्हें अकेले प्राप्त कर सकती हैं?

प्रश्न-3 मौद्रिक नीति के यन्त्र के रूप में न्यूनतम रक्षित अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं में कौन बेहतर हैं? तर्क दीजिए।

प्रश्न-4 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(I) मुद्रा की उदासीनता

(II) मूल्य स्थिरता

(III) विनिमय दर की स्थिरता

(IV) पूर्ण रोजगार

(V) आर्थिक संवृद्धि

इकाई 5 : विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका
(UNIT 5 : ROLE OF MONETARY POLICY IN DEVELOPING COUNTRIES)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका
  5.3.1. विकसित तथा विकासशील देश
  5.3.2. मौद्रिक नीति की भूमिका
  5.3.3. मौद्रिक नीति की असफलता के कारण
  5.3.4. भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य
  5.3.5. भारत की वर्तमान मौद्रिक नीति: एक परिदृश्य
5.4 अभ्यास प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि कोई भी आर्थिक नीति सर्वकालिक नहीं होती है। विकसित तथा विकासशील देशों में - प्रतिव्यक्ति आय, बचत एवं पूजी निर्माण की दर, शिक्षा, स्वास्थ्य, भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि, तकनीकी ज्ञान एवं नव प्रवर्तन की स्थिति आदि के आधार पर अन्तर किया जाता है। यही कारण है कि दोनों ही देशों के लिए मौद्रिक नीति का एक ही उद्देश्य तथा एक ही कार्य प्रणाली हो यह सम्भव नहीं है। आप जान गये होंगे कि अनेक विवादों के बावजूद अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विकसित देशों में मौद्रिक नीति का उद्देश्य पूर्ण रोजगार होना चाहिए तथा विकासशील देशों में आर्थिक संवृद्धि। वर्तमान अध्याय में आप जान पायेंगे कि मौद्रिक नीति कैसे विकासशील देशों में आर्थिक संवृद्धि को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- ✓ विकसित एवं विकासशील देश में क्या अन्तर है?
- ✓ विकासशील देशों में मौद्रिक नीति कैसे उपयोगी हो सकती है?
- ✓ मौद्रिक नीति क्यों पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाती है?
- ✓ भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य क्या रहा है?
- ✓ वर्तमान समय में मौद्रिक नीति के यंत्रों का मूल्य क्या है?

5.3 विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका

5.3.1 विकसित तथा विकासशील देश

आपको सीधे और सरल शब्दों में बताते हैं कि अविकसित वह है, जहाँ विकास की आशा ही नहीं है जैसे- अन्टार्कटिक, आर्कटिक तथा सहारा का कुछ भाग। विकासशील वह है जहाँ विकास के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं है, जैसे- भारत, पाकिस्तान, युगाण्डा पनामा आदि। विकसित वह है जहाँ इच्छानुसार विकास की सभी सम्भावनाएँ एवं अवसर उपलब्ध हैं, जैसे- अमेरिका, जापान, ब्रिटेन तथा फांस आदि। तकनीकी रूप में विकसित तथा विकासशील देशों को उनकी कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति आय, गरीबी का स्तर, बेरोजगारी, उद्यमशीलता, उत्पादन तथा उत्पादकता का स्तर, बचत एवं पूँजी निर्माण की दर तथा मानव विकास सूचकांक आदि के आधार पर पृथक किया जाता है।

5.3.2 मौद्रिक नीति की भूमिका

हम जानते हैं कि विकसित तथा विकासशील देशों में आर्थिक उद्देश्य, आर्थिक संसाधन तथा आर्थिक दशाएँ अलग-अलग होती हैं। ऐसे में दोनों के लिए एक ही मौद्रिक नीति कैसी उपयोगी हो सकती है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति का कार्य अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि उसे उस देश को प्राथमिक अवस्था से निकालकर आत्मस्फूर्ति की अवस्था तक ले जाना होता है। आप जानते हैं कि विकासशील देशों को आधारभूत समस्या गरीबी और बेरोजगारी है। इसे दूर करने के लिए मुद्रा तथा साख का विस्तार अनिवार्य है, भले ही मूल्य स्तर थोड़ा ऊँचा ही क्यों न हो जाय। इसका अभिप्राय यह है कि आर्थिक विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए उदार मौद्रिक नीति लागू करना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विकासशील देशों में विकास केन्द्रित मौद्रिक नीति किस भूमिका में वास्तव में होना चाहिए? अर्थात् विकासशील देश में मौद्रिक नीति को किन जरुरतों को पूरा करना

चाहिए। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति को लागू करते समय मौद्रिक अधिकारियों को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

1. **स्फीतिक प्रभाव पर नियन्त्रण -** आप जानते हैं कि अर्थव्यवस्था चाहे पूँजीवादी हो चाहे समाजवादी दोनों का ही उद्देश्य अधिकतम सामाजिक हित सुरक्षा करना है। यही कारण है कि सरकारें बड़े पैमाने पर विभिन्न विकास परियोजनाओं में एक साथ निवेश करती है। इसका परिणाम यह होता है कि कुल प्रभावपूर्ण माँग बढ़ जाती है परन्तु उसी अनुपात उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है। इसलिए आन्तरिक कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो स्फीति पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित कर सके। यदि मौद्रिक नीति ऐसा करने में असफल रहती है तब वह विकास प्रक्रिया में सहायक नहीं बन पायेगी। विकास के लिए आवश्यक है कि बचत पर्याप्त होने के साथ-साथ निवेश के बराबर भी हो। अल्पविकसित देशों में बचत की कमी को पूरा करने के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है, जो स्फीतिक प्रभावों में वृद्धि करते हैं। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो जनता में बचत की प्रवृत्ति को बढ़ाये तथा विनियोग के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर से निर्भरता कम करे।
2. **नये क्षेत्रों का मौद्रिकीकरण -** व्यापार के आकार में वृद्धि तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त एवं कुशल मौद्रिक क्षेत्र का होना एक अनिवार्य जरूरत है। अतः मौद्रिक नीति की प्राथमिकी जिम्मेदारी है कि वह देश के उन क्षेत्रों में, जहां या तो बैंकिंग सुविधाएँ नहीं है या तो कम हैं, बैकिंग सुविधाओं का विस्तार करे ताकि बैंकिंग आदतों में सुधार अथवा वृद्धि हो सके। हम जानते हैं कि बड़े पैमाने पर अमौद्रिक क्षेत्र का पाया जाना ही विकासशील देशों का सबसे बड़ा लक्षण है। ऐसे क्षेत्र में ब्याज दर के परिवर्तन तथा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का आर्थिक क्रियाकलापों पर कोठ प्रभाव नहीं पड़ता है। क्योंकि आर्थिक लेन-देन में मुद्रा सम्मिलित नहीं रहती है और सभी सौदे वस्तु विनिमय प्रणाली द्वारा सम्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में एक बहुत बड़ा क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण से बाहर रहता है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे इन क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार हो। यह एक तरफ तो जनता की निष्क्रिय बचत तो गतिशीलता प्रदान करेगी जिससे प्राथमिक उद्योगों को निवेश हेतु पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हो सकेंगे दूसरी तरफ मौद्रिक क्षेत्र का विस्तार होने से अधिक से अधिक क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण में आ जायेंगे। इन सबके परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति और भी प्रभावशाली हो जायेगी।
3. **संगठित तथा असंगठित क्षेत्र का समन्वय-** हम जानते हैं कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था दो भागों में विभाजित होती है- संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक का नियन्त्रण केवल संगठित क्षेत्र तक ही सीमित रहता है और असंगठित क्षेत्र इसकी पहुँच से बाहर रहते हैं। ऐसे में जब केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है तब यह असंगठित क्षेत्र भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है। आवश्यकता इस बात की है कि असंगठित क्षेत्र को बैंकिंग व्यवस्था के साथ समन्वित किया जाय। अतः मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह संगठित तथा असंगठित क्षेत्र को समन्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाये। हम यह भी जानते हैं कि बिल बाजार के अविकसित होने के कारण अल्पविकसित देशों में मुद्रा बाजार भी अस्पष्ट एवं अविकसित होता है। ऐसे में बिल बाजार को विकसित करने के लिए जरुरी कदम उठाना मौद्रिक नीति के लिए अपरिहार्य है।

4. **अविकसित मुद्रा बाजार -** अब तक तो आप यह समझ ही गये होंगे कि कमजोर मुद्रा बाजार अल्पविकसित देशों की विशेषता होने के साथ-साथ उनकी परेशानी का कारण भी है। मुद्रा बाजार अविकसित होने कारण समान ब्याज दर संरचना नहीं पायी जाती है। अर्थव्यवस्था में व्याप्त विभिन्न ब्याज दरों का बैंक दर से कोई ताल-मेल नहीं पाया जाता है। बैंक दर में कोई परिवर्तन इन विभिन्न ब्याज दरों को प्रभावित नहीं कर पाता है। परिणामस्वरूप केन्द्रीय बैंक का मौद्रिक बाजार पर प्रभाव नियन्त्रण स्थापित नहीं हो पाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति को इस प्रकार होना चाहिए ताकि वह विभिन्न ब्याज दरों के बीच तालमेल स्थापित कर एक समन्वित ब्याज दर संरचना का विकास कर सके।
5. **विनियोग प्रोत्साहन -** आप जानते हैं कि विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक उपरिसुविधाओं का पर्याप्त मात्रा में होना अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब केन्द्रीय बैंक, व्यावसायिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का आपस में पूर्ण समन्वय हो। अतः मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह मुद्रा बाजार के सभी घटकों के बीच सहयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करें।

   ऐसा करने पर ही मौद्रिक नीति बचत को गतिशील कर विनियोग तथा उत्पादन को बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

5.3.3 मौद्रिक नीति की असफलता के कारण

विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की सफलता में संदेह रहता है। इसका कारण यह है केन्द्रीय बैंक या सरकार को बेलोचपूर्ण अर्थव्यवस्था, जनता, औद्योगिक, जनता, औद्योगिक तथा शासन का सहयोग नहीं मिलता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो- आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मोर्चे पर विद्यमान कुप्रबन्धन एवं भ्रष्टाचार विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की असफलता के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। सहयोग न मिलने के कारण निम्नलिखित है-

क. विकासशील देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली, सौदों की बहुत बड़ी मात्रा को नियन्त्रित करती है। जाहिर है कि मुद्रा का प्रयोग न होने के कारण मौद्रिक नीति की सफलता भी सन्देह के घेरे में आ जाती है।

ख. विकासशील देशों में कुल साख की मात्रा का एक बड़ा भाग साहूकारों, जमीनदारों तथा सूदखोरों द्वारा पूरा किया जाता है। इनकी कार्य प्रणाली पर केन्द्रीय बैंक का प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसे में स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति वांछनीय सफलता नहीं प्राप्त कर सकती है।

ग. विकासशील देशों स्कन्ध बाजार के सुव्यवस्थित न होने के कारण केन्द्रीय बैंकों को खुले बाजार की क्रियाएँ (प्रतिभूतियों का क्रय तथा विक्रय) सम्पन्न करने में असुविधा होती है। जाहिर है कि मौद्रिक नीति ऐसे में पूर्ण सफल नहीं हो सकती है।

घ. विकासशील देशों में बैंकों के बीच आपसी व्यवहार में दृढ़ता पाये जाने के साथ-साथ उनके बीच असहयोगात्मक रवैया पाया जाता है। इसी वजह से मौद्रिक नीति को अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त होती है। मौद्रिक नीति को सफल बनाने के लिए मजबूत बैंकिंग व्यवस्था का गठन आवश्यक है।

5.3.4 भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य

भारतीय मौद्रिक पद्धति पर कार्य करने के लिए गठित चक्रवर्ती समिति ने 1985 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें मौद्रिक नीति के निम्नलिखित समष्टि आर्थिक उद्देश्य निर्धारित किये गये -

(अ) मूल्य स्थिरता

(ब) बचत को प्रोत्साहन

(स) गैर स्फीतिक तरीके से संसाधनों को गतिशील करना।

(द) अधिक उत्पादकता के उद्देश्य से संसाधनों का प्राथमिकता के क्षेत्र में आवंटन तथा।

(य) कुशल भुगतान पद्धति को बढ़ावा देना।

भारत में योजना काल के दौरान मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य रहे हैं-

(अ) बचतों को गतिशील करना।

(ब) विनियोग को प्रोत्साहन देना तथा ऐसा माहौल उत्पन्न करना जो योजना के उद्देश्यों को प्रापत करने में सहायक हो सके।

(स) सम्पूर्ण आर्थिक वृद्धि के लख्य को सुनिश्चित करने के लिए कृषि, उद्योग तथा अन्य उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त साख सुविधाएँ उपलब्ध करना।

(द) स्फीति को रोकना तथा सापेक्षिक कीमतों और सामान्य कीमत स्तर का विवेकपूर्ण तथा अर्थव्यवस्था सहयोगी स्वरूप सुनिश्चित करना।

(य) बिना किसी वित्तीय व्यवधानों के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाना।

आप यदि ध्यान दें तो पायेंगे कि सभी उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित है। हाँ, थोड़ा विवाद दो बड़े लक्ष्यों- आर्थिक वृद्धि तथा कीमत स्थिरता की बीच हो सकता है। अतः इन दोनों का भी समन्वय आवश्यक है। साठ के दशक से रिजर्व बैंक की नीति नियन्त्रित विस्तार की रही है। जबकि सत्तर के दौरान आर.बी.आई. का उद्देश्य स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास रहा है। अर्थात् विकास के वितरणात्मक पहलू पर विशेष ध्यान दिया गया। वर्तमान समय में प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को पर्याप्त साख उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय बैंक उदार मौद्रिक नीति का पालन कर रहा है।

5.3.5 भारत की वर्तमान मौद्रिक नीति: एक परिदृश्य

आप जानते हैं कि भारत का केन्द्रीय बैंक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया है, जो मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन करता है। रिजर्व बैंक के गवर्नर डॉ डी. सुब्बाराव ने 17 अप्रैल, 2012 को वित्तीय वर्ष 2012-13 के लिए मौद्रिक नीति की घोषणा की। यहाँ हम मौद्रिक नीति के मुख्य बिन्दुओं को संक्षेप में जानेंगे।

प्रक्षेपण-

क. वर्तमान वित्तीय वर्ष के लिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की दर 7.3 प्रतिशत निर्धारित की गयी।

ख. मार्च 2013 के लिए स्फीति की दर 6.5 प्रतिशत तय की गयी।

ग. वित्तीय वर्ष 2012-13 के ड3 में वृद्धि दर 15 प्रतिशत निर्धारित की गयी।

प्राथमिकताएँ

क. विभिन्न नीतिगत दरों वर्तमान वृद्धि सुधारों के अनुरूप समायोजित करना।

ख. माँग प्रेरित स्फीति के जोखिम से सुरक्षा प्रदान करना।

ग. वित्तीय व्यवस्था और अधिक तरल बनाना।

मौद्रिक उपाय

क. बैंक दर को 9 प्रतिशत पर समायोजित किया गया।

ख. अनुसूचित बैंकों के लिए नकदरक्षित अनुपात उनके NDTL (Net Demand and Time Liability) अर्थात् शुद्ध माँग एवं समय दायित्व का 4.75 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

ग. तरलता समायोजन सुविधा के अन्तर्गत रेपो रेट 8 प्रतिशत निर्धारित की गयी।

घ. रेपो रेट के अनुपालन में ही रिवर्स रेपो रेट 7 प्रतिशत निर्धारित की गयी है।

ङ. मार्जिनल स्टैण्डिंग फैसिलिटी (MSF) दर 9 प्रतिशत निर्धारित की गयी जो रेपो रेट से 1 प्रतिशत अधिक होती है।

सम्भावित उपलब्धियाँ

यह सम्भावना व्यक्त की गयी कि यदि अन्य बातें समान नहीं तो वर्तमान मौद्रिक नीति निम्न उद्देश्य हासिल करने में सफल रहेगी।

क. संकटकाल के बाद अर्थव्यवस्था की जो वर्तमान प्रवृत्ति है, उसमें स्थिरता आयेगी।

ख. स्फीति तथा स्फीतिक प्रत्याशाओं को नियन्त्रित करने में सफल रहेगी।

ग. आर्थिक व्यवस्था को अधिक से अधिक तरलता प्रदान कर सकेगी।

5.4 अभ्यास प्रश्न

निम्न कथनों में से सत्य या असत्य छांटियें -

(क) मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति के साथ ही उपयोगी हो सकती है। (सत्य/असत्य)

(ख) विकासशील देशों में अमौद्रिक क्षेत्र कम हैं। (सत्य/असत्य)

(ग) विकासशील देशों में बैंकों का आपस में सहयोग नहीं है। (सत्य/असत्य)

(घ) विकासशील देशों में स्कन्ध बाजारपूर्ण विकसित नहीं होते हैं। (सत्य/असत्य)

(च) चक्रवर्ती समिति ने अपनी रिपोर्ट 1985 में प्रस्तुत की। (सत्य/असत्य)

(छ) डॉ डी. सुब्बाराव आर.बी.आई0 के गवर्नर है। (सत्य/असत्य)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) साठ के दशक में रिजर्व बैंक की नीति .... विस्तार की रही है। (नियन्त्रित/अनियन्त्रित)

(ख) सत्तर के दशक में आर0बी0आई0 का उद्देश्य .... रहा है। (स्फीति नियन्त्रण/स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास)

(ग) हाल के वर्षो में केन्द्रीय बैंक की नीति .... का पालन रहा है। (उदार मौद्रिक नीति/कठोर मौद्रिक नीति)

5.5 सारांश

आपने जाना कि विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के चरित्र में आधारभूत अन्तर होने के कारण दोनों में मौद्रिक नीति की क्रियाशीलता भिन्न-भिन्न होती है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की प्राथमिकता यद्यपि की आर्थिक विकास रहा है परन्तु स्फीति नियन्त्रण तथा स्थिरता एवं सामाजिक न्याय की भी अनदेखी नहीं की गयी है। यह अवश्य है कि समय एवं परिस्थिति को देखते हुए प्राथमिकताओं के क्रय एवं तीव्रताओं में परिवर्तन होते रहे हैं।

5.6 शब्दावली

- **उदार मौद्रिक नीति-** जिसमें मुद्रा तथा साख के विस्तार की प्रवृत्ति होती है।
- **बैंक दर-** वह दर जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को उधार देता है।
- **रेपो रेट-** वह दर जिस केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के बिलों की कटौती करता है।
- **रिवर्स रेपो रेट-** वह दर जिस पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक के बिलों की कटौती करते हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-1. (क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य, (घ) सत्य, (च), सत्य, (छ) सत्य
प्रश्न-2. (क) नियन्त्रित, (ख) स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास, (ग) उदार मौद्रिक नीति

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade'*, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics'*, Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

5.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की विवेचना कीजिए।
2. विकासशील देशों में मौद्रिक प्रबन्धन के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
3. भारत में मौद्रिक नीति के क्या उद्देश्य रहे हैं? विवेचना कीजिए।
4. भारत की मौद्रिक नीति पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 6 : मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
(UNIT 6 : QUANTITY THEORY OF MONEY)

6.1 प्रस्तावना
6.2. उद्देश्य
6.3 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
  6.3.1. नकद लेन-देन दृष्टिकोण
  6.3.2. नकद शेष दृष्टिकोण
  6.3.3. तुलनात्मक विश्लेषण (लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण)
6.4 अभ्यास प्रश्न
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

राबर्टसन एवं केंज दोनों ही अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय मुद्रा की एक इकाई से खरीदी जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा से है। मुद्रा का मूल्य अथवा क्रय शक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर पर निर्भर करती है। सामान्यतः मुद्रा के मूल्य और सामान्य कीमत स्तर (वस्तुओं तथा सेवाओं का औसत मूल्य) में विपरीत तथा मुद्रा की मात्रा और वस्तुओं के मूल्य में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। मुद्रा के मूल्य और कीमत से सम्बन्धित अति प्रारम्भिक सिद्धान्त मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त का अध्ययन इस इकाई में किया जायेगा। उन कारकों की व्यापक समझ पैदा होगी जो मुद्रा, मुद्रा मूल्य, सामान्य कीमत तथा सौदों की मात्रा आदि से क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हों जायेंगे कि-

- ✓ वस्तु के मूल्य तथा मुद्रा के मूल्य में अन्तर कर सकें,
- ✓ मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त एवं उसके जन्म सम्बन्धी विवाद को समझ सकें,
- ✓ परिमाण सिद्धान्त के विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच तुलनात्मक अन्तर कर सकें और
- ✓ विभिन्न कीमत स्तरों से परिचित हो सकें।

6.3 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त

6.3.1 नकद लेन-देन दृष्टिकोण

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (जिसका प्रयोग माक्र्स ने रिकार्डों तथा उसके समवर्ती अर्थशास्त्रियों के लिए किया) ने मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त वणिकवादी विचारक डेविड ह्यूम की पुस्तक 'Political Discourse' से प्राप्त किया। सिद्धान्त का सर्वप्रचलित रूप 1911 में इरविंग फिशर ने अपनी कृति 'Purchasing Power of Money' में दिया। मुद्रा मूल्य का निर्धारण मुद्रा की माँग और मुद्रा की पूर्ति से होता है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त यह मान लेता है कि मुद्रा की माँग स्थिर रहती है और मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है। **जॉन लॉक** के अनुसार मुद्रा के विनिमय मूल्य और उपयोग मूल्य होते हैं। **केन्टीलान** ने इस ओर संकेत किया कि मुद्रा की कुल पूर्ति जानने के लिए मुद्रा की तीव्रता पर विचार करना आवश्यक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त ह्यूम, लॉक, केन्टीलान तथा फिशर एवं अन्य अर्थशास्त्रियों के सामूहिक प्रयास का फल है।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का कथन -

फिशर के अनुसार, *"अन्य बातें स्थिर रहने पर जब चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो कीमत स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।"*

टाजिंग के अनुसार, *"अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा दुगुनी कर देने से कीमतें पहले से दुगुनी तथा मूल्य आधा रह जायेगा। अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा आधी कर देने पर मुद्रा का मूल्य पहले से दुगुना तथा कीमतें आधी हो जायेंगी।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं से परिमाण सिद्धान्त के बारे में दो बातें स्पष्ट होती हैं-

1. मुद्रा की मात्रा और सामान्य कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।
2. मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

इस तथ्य को एक तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

क्रम	मुद्रा की मात्रा (M)	वस्तु एवं सेवा की मात्रा (T)	सामान्य कीमत स्तर (P)	मुद्रा का मूल्य ($1/P$)
1.	20	20	$\frac{M}{T}=\frac{20}{20}=1$	$\frac{1}{P}=\frac{1}{1}=1$
2.	40 (दुगुना)	20	$\frac{M}{T}=\frac{20}{40}=2$ (दुगुना)	$\frac{1}{P}=\frac{1}{2}=0.5$ (आधा)
3.	10 (आधा)	20	$\frac{M}{T}=\frac{10}{20}=0.5$ (आधा)	$\frac{1}{P}=\frac{1}{0.5}=2$ (दुगुना)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुद्रा की मात्रा दुगुना करने पर सामान्य कीमत स्तर दुगुना तथा मुद्रा का मूल्य आधा रह जाता है तथा इसके विपरीत भी।

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त - परिमाण सिद्धान्त को समझने के लिए मुद्रा की माँग और पूर्ति को समझना आवश्यक है।

मुद्रा की माँग - वस्तुओं तथा सेवाओं को प्राप्त करने के लिए मुद्रा की माँग की जाती है। अतः किसी समय विशेष पर मुद्रा की माँग विनिमय की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि कुल सौदों की मात्रा T तथा सामान्य कीमत पर P है तो कुल मुद्रा की माँग ज्ञात की जा सकती है-

कुल माँग (D) = P (सामान्य कीमत स्तर पर) * T (कुल सौदे)

मुद्रा की पूर्ति - प्रचलन में विद्यमान मुद्रा (m) प्रचलित मुद्रा का संचलन वेग (v) साख मुद्रा (m^1) तथा साख मुद्रा का संचलन वेग मिलकर मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण करते हैं।

माँग और पूर्ति की उपर्युक्त धारणाओं का ही प्रयोग करके फिशर ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का समीकरण दिया।

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त अर्थात् नकद सौदा समीकरण -

मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

$$P * T = m * v$$

फ्रिशर का संशोधित समीकरण -

मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

$$P * T = m * v + m^1 * v^1$$

या

$$P = \frac{mv+m^1v^1}{T}$$

या

$$\frac{1}{P}(value\ of\ money) = \frac{T}{mv+m^1v^1}$$

यहाँ,

m = प्रचलन में मुद्रा या करेन्सी की मात्रा

v = प्रचलित मुद्रा या करेन्सी का प्रचलन वेग

(प्रचलन वेग से अभिप्राय मुद्रा या साख की एक इकाई के प्रयोग की आवृत्ति से है। यदि 1 रूपये के नोट को दिये हुए समय में 10 बार क्रय-विक्रय के लिए प्रयोग किया जाता है तो उसका संचलन वेग 10 होगा)।

m^1 = बैंक मुद्रा या साख मुद्रा की मात्रा

v^1 = साख मुद्रा की चलन गति

P= कीमत स्तर

$\frac{1}{P}$ = मुद्रा का मूल्य

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण -

फिशर के समीकरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

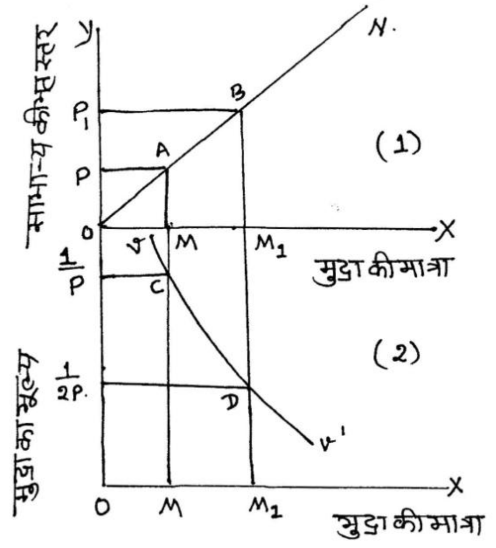

उपरोक्त चित्र के पहले (ऊपर वाले) भाग में,

1. X अक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा Y अक्ष कीमत स्तर प्रदर्शित है।
2. मुद्रा की मात्रा OM से OM^1 (दुगुना) करने पर कीमत स्तर OP से बढ़कर OP^1 (दुगुना) हो जाता है।
3. ON रेखा मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के आनुपातिक सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

उपरोक्त चित्र के दुसरे (नीचे वाले) भाग में,

1. X अक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा Y अक्ष पर मुद्रा का मूल्य (1/P) व्यक्त है।
2. मुद्रा की मात्रा OM से बढ़ाकर OM^1 (दुगुना) करने पर मुद्रा का मूल्य 1/P से घटकर 1/2P (आधा) हो जाता है।
3. VV^1 मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य के बीच विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध की व्याख्या करता है।

फिशर के समीकरण की मान्यताएँ

1. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का अनुपात स्थिर रहता है।
2. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का प्रचलन वेग स्थिर रहता है।
3. मूल्य स्तर निष्क्रिय रहता है अर्थात् डए ड1ए अए अ1 तथा ज् को प्रभावित नहीं करता है।
4. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है और ज् की मात्रा स्थिर रहती है।
5. यह सिद्धान्त दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है अर्थात् दीर्घकाल में मुद्रा की मात्रा तथा सामान्य कीमत स्तर में समन्वय स्थापित हो जाता है।

नकद सौदा समीकरण की आलोचनाएँ -

1. यह सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं, जिनकी व्याख्या उपर की गयी है, पर आधारित है। ए मान्यताएँ सिद्धान्त की व्यावहारिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है।
2. यह सिद्धान्त अल्पकाल की उपेक्षा करता है जबकि अर्थव्यवस्था की अल्पकालीन समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं और उनका विश्लेषण अधिक उपयोगी हुआ करता है।
3. अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं की भांति मुद्रा का मूल्य भी मूल्य के सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित हो सकता है। पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। यह सिद्धान्त मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्र को अलग कर देता है।
4. यह एक पक्षीय सिद्धान्त है, क्योंकि पूर्ति पक्ष पर अधिक बल देता है।
5. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन, मूल्य को किस प्रकार प्रभावित करता है, इस प्रक्रिया की व्याख्या नहीं करता है।
6. यह ब्याज दर की उपेक्षा करता है जबकि हाट्रे, हायक तथा कींस का मानना है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के बीच का सम्बन्ध ब्याज द्वारा नियमित होता है।
7. व्यवहार में बहुत सौदे वस्तु विनिमय तथा साख के द्वारा किये जाते हैं। जबकि यह सिद्धान्त नकद लेन-देन के स्तर द्वारा ही मुद्रा की क्रयशक्ति को मापता है। अतः क्रयशक्ति का सही माप प्रस्तुत नहीं करता है।
8. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का मूल्य पर प्रभाव कुछ समय बाद पड़ता है, जबकि फिशर का समीकरण इस समय विलम्बता पर ध्यान नहीं देता है।
9. यह सिद्धान्त संचित मुद्रा पर ध्यान नहीं देता है।
10. व्यापर चक्र की व्याख्या करने में असफल है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि मूल्य गिरते हैं तो मुद्रा की मात्रा बढ़ाकर मूल्य बढ़ाया जा सकता है परन्तु 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौरान अनुभव बताते हैं कि ऐसा हो नहीं पाया।

मुद्रा का प्रचलन या चलन गति- यदि 10 रुपये का नोट दिन में 10 बार विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग होता है तो उसका दैनिक प्रचलन वेग 10 होगा। मुद्रा की कुल मात्रा में इसको सम्मिलित करते हैं। किसी देश में मुद्रा का चलन गति निकालने के लिए एक वर्ष के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में मुद्रा की चलन मात्रा से भाग दे दिया जाता है।

$$\text{प्रचलन गति } (V) = \frac{\text{कुल राष्ट्रीय उत्पाद } (GNP)}{\text{प्रचलन में मुद्रा}}$$

चलन गति को निर्धारित करने वाले तत्व –

1. मुद्रा की मात्रा यदि कम है तो चलन गति अधिक होगी क्योंकि वह बार-बार प्रयोग में लायी जायेगी।
2. यदि क्रय में उधार लेन देन का प्रचलन है, तब चलन वेग कम होगा।
3. यदि जनता में बचत की आदत कम है तब चलन गति अधिक होगी।
4. यदि जनता तथा व्यापारियों में तरलता पसंदगी अधिक है तब चलन वेग कम होगा।
5. यदि मजदूरी भुगतान देर से होता है तो लोग अपने पर अधिक नकद रखेंगे और चलन गति कम होगी।
6. यदि यातायात तथा संदेश वाहन पूर्ण विकसित अवस्था में है तो व्यापार का आकार बढेगा परिणामस्वरूप चलन वेग भी बढ़ेगा।

6.3.2 नकद शेष दृष्टिकोण

कैम्ब्रिज स्कूल के अर्थशास्त्रियों (मार्शल, पीगू तथा राबर्टसन) ने स्पष्ट किया कि सामान्य कीमत स्तर मुद्रा की कुल मात्रा पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मुद्रा की उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसे लोग अपने पास नकद रखते हैं। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को 'नकद शेष दृष्टिकोण' के नाम से जाना जाता है। मार्शल तथा राबर्ट्सन ने मुद्रा के मूल्य के सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त की ही एक दशा माना। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की माँग पर अधिक बल देता है इसलिए इसे मुद्रा की माँग का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

सिद्धान्त की मुख्य बातें- नकद शेष दृष्टिकोण की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

1. मुद्रा की पूर्ति- निश्चित समय बिन्दु पर जनता के पास उपलब्ध नोट, सिक्के तथा बैंकों में माँग जमा के योग को मुद्रा की पूर्ति कहते हैं।

फिशर के समीकरण में सयम अवधि का प्रयोग किया गया है, इसलिए वहाँ चलन गति की भूमिका महत्वपूर्ण है। परन्तु समय के बिन्दु पर चलन गति का प्रभाव नहीं पड़ता है।

2. मुद्रा की माँग- कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की माँग लेन-देन करने के लिए नहीं (फिशर समीकरण) बल्कि संचय के लिए करते हैं ताकि जरूरत पड़ने पर लेन-देन कर सकें।

इस प्रकार अर्थव्यवस्था में सभी लोग अपनी वास्तविक आय का जितना हिस्सा नकद रूप में रखना चाहते हैं उसे ही मुद्रा की माँग कहा गया है।

मुद्रा की माँग में वृद्धि- लेन देन में व्यय कम →वस्तुओं के मूल्य में कमी → मुद्रा के मूल्य में वृद्धि

मुद्रा की माँग में कमी → लेन-देन में व्यय अधिक → वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि → मुद्रा के मूल्य में कमी

विभिन्न नकद समीकरण (Different Cash Balance Equations) -

मार्शल का समीकरण - मार्शल के मतानुसार, मुद्रा की माँग मौद्रिक आय का फलन है।

$$M = KY$$

चूंकि मौद्रिक आय (Y) कुल उत्पादन (O) तथा कीमत स्तर (P) का गुणनफल होता है। अतः

$$Y = P \times O$$

or $$M = K \times P \times O$$

or $$P = \frac{M}{KO}$$

यहाँ,

M = मुद्रा की माँग

K = व्यावहारिक स्थिरांक (आय का वह भाग जो नकद रूप में रखा जासकता है। यह आय का 1/5, 1/10 अथवा 1/20) कुछ भी हो सकता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण -

मान लिया K= 1/4 , O = 1000 इकाइयाँ तथा m = Rs. 2000 तो उत्पादन की एक इकाई का मूल्य-

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{4} \times 1000} = \frac{2000}{250} = 8\ Rs.$$

मार्शल के अनुसार यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर भी यदि K में परिवर्तन हो जाय तो कीमत स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जायेगा। मान लिया k, 1/4 से बढ़कर 1/2 हो जाता है, तब मूल्य-

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{2} \times 1000} = \frac{2000}{500} = 4\ Rs.$$

अतः यदि नकद रखने की इच्छा बढ़ जाती है तब मूल्य स्तर कम हो जायेगा।

पीगू का समीकरण (Pigou's Equations)-

मार्शल के नकद शेष समीकरण को संशोधित करके पीगू ने नया समीकरण प्रस्तुत किया। इसमें मौद्रिक आय के स्थान पर वास्तविक आय को वरीयता प्रदान की गयी। समीकरण इस प्रकार है-

$$P = \frac{KR}{M}$$

यहाँ,

P= मुद्रा की मूल्य

K= वास्तविक आय का वह भाग जो नकद के रूप में मांगा जाता है।

R= कुल वास्तविक आय (वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में)

M= मुद्रा की कुल मात्रा

चूंकि लोग अपनी आय का नकद अंश केवल विधि ग्राह्य मुद्रा (करेन्सी) के रूप में नहीं रखते बल्कि बैंक जमा के रूप में भी संग्रह करते हैं।

इसलिए पीगू ने अपने समीकरण में संशोधन कर दिया।

1. मुद्रा की एक इकाई का मूल्य -

$$P = \frac{KR}{M}[c + h(1 - c)]$$

2. वस्तु की इकाई का मूल्य -

$$M = \frac{KR}{P}[c + h(1 - c)]$$

यहाँ c जनता के पास नकदी,

c= बैंक जमा

1-c= बैंक जमा का वह भाग जो बैंक अपने पास नकद रखते हैं। जिसे नकद रक्षित अनुपात कहते हैं।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण -

मान लिया

$$K = \frac{1}{10}, c = \frac{1}{3}, h = \frac{1}{10}$$, R = 4000 क्विंटल चावल

$$P = \frac{K.R.}{M}\left[c + h\,(1 - c)\right]$$

$$= \frac{\frac{1}{10} \text{ x } 4000}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10}\left(1 - \frac{1}{3}\right)\right]$$

$$= \frac{\frac{1}{10} \text{ x } 4000}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10}\left(1 - \frac{1}{3}\right)\right]$$

$$= \frac{400}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10} \text{ x } \frac{2}{3}\right]$$

$$= \frac{1}{5}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{15}\right]$$

$$= \frac{1}{5} \text{ x } \frac{2}{5}$$

$$P = \; = \frac{2}{25}$$ क्विंटल चावल

राबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equations) -

कैम्ब्रिज समुदाय में राबर्टसन का समीकरण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। राबर्टसन ने निम्नलिखित समीकरण प्रदान किया -

M = PKT

जहाँ

M= मुद्रा की मात्रा

P= सामान्य मूल्य स्तर

K= मुद्रा की वह मात्रा जो निश्चित समय में T के एक अंश के लिए मांगी जाती है।

T= एक निश्चित समय पर वस्तुओं तथा सेवाओं का कुल व्यापार

अतः

$$P = \frac{M}{KT} \text{ या } \frac{1}{KT} \text{ x } M$$

अतः K और Tस्थिर रहें तो P तथा M में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जायेगा। राबर्टसन ने आनुपातिकता के नियम में अपना विश्वास प्रदर्शित किया।

कींस का समीकरण (Keynes' Equations) -

कींस ने अपनी पुस्तक 'A tract on Monetary Reforms' में यह समीकरण दिया। उनके अनुसार लोग केवल उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने के लिए मुद्रा रखते हैं।

$$n = P\,(K + rK^1)$$

जहाँ

N= समाज में चलन में विद्यमान विधि ग्राह्य मुद्रा

P= उपभोग इकाई की वस्तु का मूल्य

K= उपभोग की उन इकाइयों की मात्रा जिन्हें लोग अपने पास नकद रूप में संचित करते हैं।

R= बैंकों के पास नकद धन

K^1= वस्तुओं व सेवाओं की वह मात्रा जिसे पाने के लिए लोग धन को नकद जमा के रूप में रखते हैं।

इस स्थिति में मुद्रा की एक इकाई का मूल्य -

$$P = \frac{n}{K + rK^1}$$

अतः स्पष्ट है कि K, r, K^1 के स्थिर रहने पर n में परिवर्तन से P में परिवर्तन होगा। जनता तथा बैंकों द्वारा अधिक नकदी रखने पर K का मूल्य कम तथा K^1 का मूल्य अधिक होता है।

कैम्ब्रिज समीकरण की आलोचना -

1. यह सिद्धान्त प्रावैगिक संसार की जटिल आर्थिक समस्याओं की व्याख्या करने में असमर्थ है।
2. सट्टा उद्देश्य के लिए मांगी जाने वाली मुद्रा की उपेक्षा करता है, अतः अपूर्ण सिद्धान्त है।
3. अन्य समीकरणों की भांति इसमें भी K तथा T को स्थिर मान लिया गया जो कि अनुचित है।
4. जमा की विभिन्न श्रेणियों (चालू, बचत तथा स्थायी) के प्रभाव की उपेक्षा की गयी है।
5. डॉन पार्टिकिन के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरण ब्याज दर की भूमिका की उपेक्षा करता है, जो अनुचित है।
6. यह सिद्धान्त नकदी की माँग पर केवल वर्तमान आय के प्रभाव की व्याख्या करता है जबकि अन्य तत्व जैसे- कीमत स्तर, मौद्रिक आदतें तथा व्यावसायिक ढांचा आदि का भी प्रभाव पड़ता है।
7. इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है, जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होता है। अर्थात् मुद्रा की माँग की लोच इकाई के बराबर होती है परन्तु अर्थव्यवस्था में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों के कारण माँग की लोच इकाई के बराबर नहीं रहने पाती है।

6.3.3 तुलनात्मक विश्लेषण (लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण)

फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों की तुलना Comparison between Fisher's and Cambridge Equation -

क्र.सं.	आधार	फिशर	कैम्ब्रिज
1	मुद्रा की माँग	मुद्रा को विनिमय का माध्यम माना गया	मुद्रा के संचय कार्य को अधिक महत्व प्रदान किया गया
2	मुद्रा का मूल्य निर्धारण	पूर्ति को अधिक महत्व	माँग को महत्व
3	प्रवाह तथा स्टॉक	मुद्रा को प्रवाह माना	मुद्रा को स्टॉक माना
4	प्रचलन गति	महत्वपूर्ण	महत्वहीन
5	समय सीमा	समयावधि से सम्बन्धित	समय बिन्दु से सम्बन्धित
6	कीमत स्तर	सामान्य कीमत स्तर की व्याख्या	कीमत स्तर उपभोग वस्तुओं कीमत

		करता है	को व्यक्त करता है।
7	काल	दीर्घकाल परिवर्तनों की ओर संकेत करता है।	अल्पकालीन समायोजन की व्याख्या करता है।
8	ब्याज दर	ब्याज दर की उपेक्षा	ब्याज दर को महत्व

कैम्ब्रिज समीकरण की श्रेष्ठता -

कैम्ब्रिज समीकरण अनेक कारणों से फिशर के समीकरण से श्रेष्ठ है। यद्यपि कि राबर्टसन ने कहा कि मोटे तौर पर दोनों समीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

1. कैम्ब्रिज समीकरण नकद शेष पर विशेष बल दिया तथा इसको प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों जैसे- प्रेरणाएँ, अनिश्चितताएँ आदि के प्रभाव को सम्मिलित करने से इसकी व्याख्या व्यापक हो गयी।
2. इसमें कुल व्यापारिक लेन-देन के स्थान पर आय के स्तर को सम्मिलित किया गया है, जो डे के अनुसार आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।
3. कुरीहारा के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरणों के चरों को ज्ञात करना फिशर के समीकरण के चरों से अधिक सरल है।
4. फिशर का समीकरण मूल्य निर्धारण में केवल मुद्रा की पूर्ति के महत्व को स्वीकार करता है जबकि कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा के मूल्य सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का ही अंश मानता है।
5. नकद शेष सिद्धान्त ने तरलता पसदंगी सिद्धान्त के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

अन्त में कैम्ब्रिज सिद्धान्त की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रो0 हेंसन को उद्धृत कर सकते हैं - *'मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का मार्शल दृष्टिकोण $M=KY$ मुद्रा तथा मूल्य के सम्बन्ध में एक सर्वथा नया तथा मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह कहना जैसा प्रायः कहा जाता है कि, नये बीजगणितीय पोषाक में यह नकद सौदा दृष्टिकोण ही है, गलत है।'* ऐसा कहना वस्तुतः मार्शल के समीकरण में उल्लिखित K के महत्व की अवहेलना करना होगा।

6.4 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (फिशर समीकरण) का वर्णन करो।
2. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की मान्यताओं का वर्णन करो।
3. कैम्ब्रिज सिद्धान्त में मुद्रा की माँग से क्या आशय है।
4. मुद्रा की माँग में वृद्धि या कमी का अर्थ लिखिए।
5. फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों की तुलना कीजिए?
6. कैम्ब्रिज सिद्धान्त की विशेषता लिखिए?

निम्नलिखित कथन गलत हैं या सही

1. मुद्रा का मूल्य उसकी माँग द्वारा निर्धारित होता है न कि पूर्ति द्वारा।
2. मार्शल ने मुद्रा की माँग को आय और सम्पत्ति का फलन माना है।
3. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में प्रचलन वेग को स्थिर मान लिया गया है।
4. फिशर का समीकरण मुद्रा को स्टॉक के रूप में महत्व देता है।

5. नकद शेष समीकरण में कींस का भी योगदान है।

रिक्त स्थान भरिए

1. फिशर के अनुसार P एक .... है। (सक्रिय/निष्क्रिय)
2. कींस के अनुसार मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में .... सम्बन्ध है। (प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष)
3. कैम्ब्रिज समीकरण कीमत स्तर की .... व्याख्या है। (दीर्घकालीन/अल्पकालीन)

6.5 सारांश

बाजार अर्थव्यवस्था में कीमत स्तर में होने वाला अनुचित परिवर्तन सदैव अर्थशास्त्रियों को परेशान करता रहा है। इस परिवर्तन के अनेक मौद्रिक एवं अमौद्रिक कारण है परन्तु प्रमुख कारण मुद्रा की पूर्ति को माना गया। इसकी व्याख्या करने वाले मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को दो रूपों में व्यक्त किया गया।

1. नकद लेन-देन समीकरण जिसको MV = PT के रूप में व्यक्त किया जाता है तथा
2. नकदी शेष समीकरण जिसको P = KR / M या M = KPO या M = KPT के रूप में लिखा जाता है, जिसे क्रमशः मार्शल, पीगू तथा राबर्टसन ने प्रस्तुत किया।

फिशर के अनुसार V और T के समय के साथ स्थिर रहने पर मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध होता है। फिशर द्वारा स्वीकार की गयी अवास्तविक मान्यताएँ ही इसकी आलोचना के लिए जिम्मेदार हैं।

फिशर ने अपने सिद्धान्त में मुद्रा के माँग पक्ष की उपेक्षा की परिणाम स्वरूप नकद शेष समीकरण में माँग पक्ष को महत्व प्रदान किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए अपनी आय का कुछ अंश नकदी के रूप में रखता है। यह तरलता पसंदगी की व्याख्या करता है जो सन्तुलन आय तथा रोजगार के निर्धारण में उपयोगी होता है। यह सिद्धान्त कीमत स्तर के नियन्त्रण में मौद्रिक नीति की सीमा की ओर भी संकेत करता है।

6.6 शब्दावली

- **बैंक जमा -** बैंक की वह जमा जिसे जमाकर्ता बिना पूर्व सूचना के निकाला जा सकता है।
- **संचय -** किसी समाज का वह पैसा जो सक्रिय चलन से निकाल कर अपने पास रख लिया जाता है।
- **पूँजी की सीमान्त क्षमता -** यह पूँजी पर प्रतिफल की दर है।
- **मौद्रिक नीति -** अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभाव को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनायी जाने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।
- **वास्तविक आय -** वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में मापी गयी आय वास्तविक आय कहलाती है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्नलिखित कथन गलत हैं या सही

उत्तर-1 गलत, 2 सही, 3 सही, 4 सही, 5 सही।

रिक्त स्थान भरिए

उत्तर- 1 निष्क्रिय, 2 अप्रत्यक्ष, 3 अल्पकालिक ।

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : ‘*Money Banking and International Trade*’, Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.

- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade'*, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics'*, Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

6.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. मुद्रा की चलन गति से क्या समझते हैं? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।
3. फिशर के परिमाण सिद्धान्त की कैम्ब्रिज सिद्धान्त की तुलना कीजिए। दोनों में किसे बेहतर समझते हैं और क्यों?
4. नकद शेष समीकरण का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई 7 : मुद्रा परिमाण का आधुनिक सिद्धान्त
(UNIT 7 : MODERN QUANTITY THEORY OF MONEY)

7.1 प्रस्तावना
7.2. उद्देश्य
7.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
7.4 अभ्यास प्रश्न
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

शिकागो के अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन को 1976 में, मौद्रिक अर्थशास्त्र, विशेष रूप से मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त, में विशेष योगदान के लिए, नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। 1936 में कींस द्वारा General Theory of Employment, Interest and Money' में परम्परारगत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की कटु आलोचना करने के बाद उसकी सर्वमान्यता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया। वर्तमान समय यदि परिमाण सिद्धान्त अपने मान सम्मान को वापस पा सका तो इसका श्रेय मिल्टन फ्रीडमैन को ही जाता है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों में मुद्रा परिमाण के आधुनिक सिद्धान्त की समझ विकसित करना है। यह बात भी स्पष्ट हो जायेगी कि परिमाण सिद्धान्त को पुनः प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी। छात्र अपने आपको परम्परागत एवं आधुनिक सिद्धान्त के बीच तुलना करने योग्य पा सकेंगे।

7.3 मिल्टन फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण सिद्धान्त

परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के निष्कर्ष एवं समीकरण में अन्तर है। फ्रीडमैन ने इसके समीकरण को तथा पाटिन्किन ने निष्कर्ष को पुनः स्थापित किया। परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय के माध्यम के रूप में है। फिशर के बाद मुद्रा के संचय कार्य पर अधिक जोर दिया गया। फ्रीडमैन ने मुद्रा को सम्पत्ति के रूप में परिभाषित किया। अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति अनेक रूपों में पायी जाती है और प्रत्येक रूप में वह कुछ न कुछ अंश तक संचय के उद्देश्य को पूरा करती है। वास्तव में परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है जबकि परिमाण सिद्धान्त का समीकरण, माँग का समीकरण है। यह उत्पादन, मौद्रिक आय तथा कीमत स्तर का सिद्धान्त नहीं है। इसके निर्धारण हेतु मुद्रा की माँग में कुछ अतिरिक्त चरों को सम्मिलित करना पड़ेगा।

फ्रीडमैन के अनुसार सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलकर सम्पत्ति सूची (Asset Portfolio) का निर्माण करती है जिसमें मुद्रा भी शामिल है। यही कारण है कि एक सम्पत्ति की माँग दूसरी सम्पत्ति की माँग पर भी निर्भर करता है। अतः कहा जा सकता है कि व्यवहार में बहु सम्पत्ति बाजार प्रारूप पाया जाता है, जिनमें विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का व्यापार होता है।

इसी रास्ते का सहारा लेकर फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक "Studies in Quantiy Theory of Money" में सामान्य कीमत सिद्धान्त तथा मुद्रा के सिद्धान्त को समन्वित करने का प्रयास किया।

सम्पत्ति की माँग का प्रतिपक्ष ही पूँजी की पूर्ति को व्यक्त करता है। दूसरी तरफ सम्पत्ति की पूर्ति का प्रतिपक्ष वित्तीय पूँजी की माँग को व्यक्त करता है। व्यय से अधिक आय बजटीय घाटे को व्यक्त करता है। यह घाटे का क्षेत्र पूँजी की माँग उत्पन्न करता है, दूसरे शब्दों सम्पत्ति की पूर्ति को। अतिरेक की स्थिति में इसका ठीक उल्टा होगा।

इसीलिए मुद्रा की माँग का सिद्धान्त, पूँजी सिद्धान्त का ही एक भाग बन जाता है।

मुद्रा की माँग का आधार -

मुद्रा की माँग सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा की जाती है। स्वामी अपनी सम्पत्ति का एक निश्चित भाग, जिसे सम्पत्ति सूची कहा जाता है, अपने पास रखता है। उद्यमी विभिन्न प्रकार के उत्पादन साधनों की माँग उत्पन्न करते हैं। उद्यमियों का उत्पादन फलन, मुद्रा की माँग का निर्धारण करता है। उत्पादन के अन्य साधनों की माँग की भांति मुद्रा की माँग भी तकनीकी दशाओं पर निर्भर करती है। सम्पत्ति सूची में परिवर्तन विनिमय द्वारा होता है तथा

उत्पादन साधनों की माँग में परिवर्तन उत्पादन के द्वारा होता है। मुद्रा की माँग इस परिवर्तन की प्रक्रिया को सहायता प्रदान करती है।

प्रत्येक अभिकर्ता का उद्देश्य अपने लाभ को अनुकूलतम करना होता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी 'सम्पत्ति सूची' को पुनः समायोजित करके उपयोगिता को अधिकतम करता है। उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

वस्तुओं की माँग की व्याख्या -

वस्तुओं की माँग की व्याख्या चुनाव के सिद्धान्त के माध्यम से की जा सकती है। अनधिमान वक्र का आकार एवं ढाल X तथा Y दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (व्यक्तिनिष्ठ) को व्यक्त करता है। चयनकर्ता अपनी वास्तविक आय तथा सापेक्षिक कीमतों को ध्यान में रखकर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है। उपभोक्ता की उपयोगिता अधिकतम तब होती तब व्यक्तिनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (तटस्थता वक्र का ढाल) तथा वस्तुनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (कीमत रेखा का ढाल) दोनों बराबर होते हैं। यह बिन्दु तटस्थता वक्र तथा कीमत रेखा के स्पर्श बिन्दु से परिलक्षित होता है। चयन के सिद्धान्त के समान मुद्रा की माँग निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

1. सम्पत्ति की कुल मात्रा- सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में विभाजित करता है, जिसमें मुद्रा भी एक है। मान लिया सम्पत्ति का एक समूह A_1, A_2, A_3.......A_n है। सम्पत्ति की कुल मात्रा बजट अवरोधक का काम करती है।
2. उपभोक्ता की भाँति - सम्पत्ति का स्वामी भी मूल्य को दिया हुआ मान लेता है। सापेक्षिक कीमतें तथा विभिन्न सम्पत्तियों पर प्रतिफल की दर सम्पत्ति सूची की संरचना को निर्धारित करती है।
3. **सम्पत्ति के स्वामी -** सम्पत्ति के स्वामी का सम्पत्ति के लिए एक निश्ति अधिमान सूची होती है। सम्पत्ति के प्रति व्यक्तिनिष्ठ अधिमान सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से प्रभावित होता है। यह मान लिया गया है कि सम्पत्ति के प्रति अधिमान का पैमान समय के साथ अपरिवर्तित रहता है। अल्पकाल में केवल 'बाह्य झटके' ही अधिमान सूची को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पत्ति सूची का एक निश्चित आकार एवं संरचना होती है।

परन्तु चयन के सिद्धान्त को सम्पत्ति के सन्दर्भ में ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि सम्पत्ति के दो स्वरूप हैं- 1. स्टॉक तथा 2. प्रवाह। स्टॉक का सम्बन्ध एक समय बिन्दु से है जबकि प्रवाह का सम्बन्ध समयावधि से है। प्रत्येक सम्पत्ति अपने धारक को एक निश्चित प्रवाह की गारण्टी प्रदान करती है। इसे ही प्रतिफल की दर या सम्पत्ति की उपज कहते हैं। प्रत्येक सम्पत्ति, उपज, आकार तथा गुणवत्ता के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होती है। यही चुनाव की समस्या उत्पन्न करती है। परन्तु स्टॉक में प्रतिफल की दर से गुणा करके आय (प्रवाह) में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार आय में प्रतिफल की दर से भाग देकर पूँजीगत मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

आय (प्रवाह) $y = w \,.\, r$

पूँजीगत मूल्य $w = y / r$

जहाँ –

y = Income (flow)

w = Wealth (Capitalised Value)

r = Rate of Return (प्रतिफल की दर)

सम्पत्ति की सापेक्षिक कीमतें सम्पत्ति के चयन का निर्देशन करती है।

मुद्रा का माँग फलन - उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त हम अब इस स्थिति में पहुँच चुके हैं कि मुद्रा के माँग फलन का निर्धारण कर सकें। एक सम्पत्ति के रूप में मुद्रा की माँग के निम्नलिखित निर्धारक हैं-

सम्पत्ति का स्टॉक -

सम्पत्ति की कुल मात्रा सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करती है। कुल सम्पत्ति मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति से मिलकर बनती है। मानवीय सम्पत्ति भी जीवनकाल में आय उत्पन्न करती है। अतः सम्पत्ति मुद्रा की माँग का निर्धारण करती है। पूँजीगत मूल्य में प्रतिफल की दर से गुणा करने पर दूसरा निर्धारक आय प्राप्त होता है।

मुद्रा के सिद्धान्त में आय को स्थायी आय के रूप में स्वीकार किया गया है, यह मापित आय से भिन्न है। स्थायी आय, दीर्घकालनी आय को इंगित करता है, जिसे प्रत्याशित आय भी कहते हैं। इसके घटक निम्नलिखित हैं-

- वर्तमान सम्पत्ति से आय
- वार्षिक आय में अल्प उतार-चढ़ाव तथा
- भविष्य में कमाने की क्षमता

अर्थात् स्थायी आय की अवधारणा भूतकाल, वर्तमान तथा भविष्य तीनों पर आधारित हैं। अतः स्थायी आय मुद्रा की माँग का प्रथम निर्धारक हैं।

- सम्पत्ति को मानवीय तथा गैर मानीवय दोनों रूपों में रखा जा सकता है। मान लिया गैर मानवीय पूँजी का मानवीय पूँजी से अनुपात (w) है। गैर मानवीय पूँजी का तो सीधे बाजार में व्यापार होता है परन्तु मानवीय पूँजी के बारे में ऐसा नहीं है। अतः w में परिवर्तन मुद्रा की माँग का दूसरा निर्धारक है।
- विभिन्न परिसम्पत्तियों पर मिलने वाला प्रतिफल भी मुद्रा की माँग को प्रभावित करता है। सम्पत्ति का स्वामी उसी संयोग का चुनाव करता है जो सूची के उत्पाद को अधिकतम कर सके। उत्पादक उद्यमी सम्पत्ति को निर्गमित करके या उसे बेचकर पूँजी खरीदते हैं। जब उद्यमी पूँजी खरीदता है तब उसे लागत चुकानी पड़ती है। ऐसे में लाभ तब अधिकतम होगा जब सम्पत्ति की सापेक्षित प्रतिफल दर तथा पूँजी खरीदने की लागत दोनों बराबर हों। अतः सम्पत्ति के स्वामी तथा उद्यमी दोनों की मुद्रा की माँग को एक समान चर प्रभावित करते हैं।
- सम्पत्ति सूची की संरचना में शामिल मुद्रा, बॉण्ड, इक्वीटी तथा भौतिक वस्तुएँ, इन चारों की उपज मुद्रा की माँग को निर्धारित करते हैं। मुद्रा की उपज को क्रयशक्ति $\left(\frac{1}{P}\right)$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अतः यह मुद्रा की माँग का तीसरा निर्धारक है।
- बॉण्ड की उपज को r_b से दर्शाया जा सकता है। बॉण्ड पर मिलने वाला ब्याज बाजार ब्याज के बराबर नहीं भी हो सकता है। अतः r_b मुद्रा की माँग का चौथा निर्धारक है।
- इक्वीटी भी तनिक अन्तर के साथ बॉण्ड ही है। इस पर मिलने वाला प्रतिफल कीमत स्तर में परिवर्तन से सम्बद्ध रहता है। अतः इक्वीटी के प्रतिफल में तीन तत्व शामिल रहते हैं, मौद्रिक उपज (r_e) कीमत स्तर तथा आय का धनात्मक एवम् ऋणात्मक मूल्य (I) अतः (r_e) मुद्रा की माँग का पाँचवाँ निर्धारक है। अन्त में भौतिक वस्तुओं का प्रतिफल आर्थिक एवं गैर-आर्थिक रूप में होता है। भौतिक वस्तुओं की मौद्रिक उपज पुनः $\frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t}$ पर निर्भर करता है। भौतिक वस्तुओं के पूँजीगत मूल्य में वृद्धि या कमी कमी कीमत परिवर्तन से सम्बन्धित है। इस प्रकार $\frac{1}{P} \cdot \frac{\partial P}{\partial t}$ मुद्रा की माँग का छठवाँ निर्धारक है।

- सम्पत्ति सूची में सम्पत्ति के स्वामी तथा उत्पादक उद्यमी के रुचि एवं अधिमान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः रूचि एवं अधिमान, जिसके लिए ‘u’ का प्रयोग किया जा सकता है, मुद्रा की माँग का सातवां निर्धारक है।

अतः मुद्रा माँग के फलन को इस प्रकार लिखा जा सकता है-

$$M = f\left(P,\ y,\ \frac{1}{P}.\frac{\partial P}{\partial t},\ r_b,\ r_e,\ w,\ u\right)$$

जहाँ-

M = मुद्रा की कुल माँग

P = सामान्य कीमत स्तर

y = कुल आय का प्रवाह

$\frac{1}{P}\ .\ \frac{\partial P}{\partial t}$ = भौतिक वस्तुओं के मौद्रिक प्रतिफल का आकार

r_b = बॉण्ड की उपज (बॉण्ड की बाजार ब्याज दर)

r_e = इक्वीटी की उपज

w= मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति का अनुपात

u= रूचि एवं अधिमान व्यक्त करने वाला चर

आधुनिक परिमाण सिद्धान्त की आलोचना -

फ्रीडमैन के दृष्टिकोण की दो आधारों पर आलोचना की जाती है।

प्रथम- फ्रीडमैन का तर्क है कि समाज में नकद शेष की माँग के निर्धारण में ब्याज दर की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहती है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ब्याज दर में वृद्धि निश्चित रूप से नकद रखने की लागत को बढ़ा देगा और नकद की माँग को कम कर देगा, परिणामस्वरूप बैंकों में जमा में वृद्धि ही जायेगी। ब्याज दर कम होने पर इसके विपरीत व्यवहार देखने को मिलेगा। अतः यह मान्यता कि जमा ब्याज के प्रति बेलोचदार होती है सही नहीं है।

द्वितीय- दूसरी मान्यता यह है कि किसी समाज में मुद्रा की पूर्ति आय तथा कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र होती है। बल्कि मुद्रा की पूर्ति आय एवं कीमत स्तर का निर्धारण करती है। परन्तु अनुभव पर आधारित अध्ययन यह बताते हैं कि आय तथा कीमत स्तर भी समान रूप से मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता -

अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धान्त परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त से श्रेष्ठ है। यह पूर्व सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक बेहतर एवं व्यापक रूप से मुद्रा की माँग की व्याख्या करता है। फ्रीडमैन ने स्वयं अपने योगदान के सैद्धान्तिक स्वरूप का अनुभव के द्वारा परीक्षण किया तथा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित किया।

7.4 अभ्यास प्रश्न

1. फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को किस रूप में प्रस्तुत किया।
2. फ्रीडमैन ने किन कारकों को मुद्रा की माँग का निर्धारक माना।

3. फ्रीडमैन के परिमाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में कौन सा कथन सहीं नहीं है।

(अ) वास्तविक आय तथा मुद्रा की माँग के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।

(ब) ब्याज दर तथा मुद्रा की माँग के बीच प्रत्यक्ष समबन्ध पाया जाता है।

(स) कीमत स्तर तथा मुद्रा की माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।

(द) कीमत स्तर में परिवर्तन तथा मुद्रा की माँग के बीच प्रत्यक्ष एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

7.5 सारांश

मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित कियाय। फ्रीडमैन ने स्पष्ट किया कि यह मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है। उत्पादन, आय या कीमत का सिद्धान्त नहीं है। इन्होंने सम्पत्ति के वृहत् रूप को परिभाषित किया। मानवीय तथा गैर मानवीय पूँजी के साथ-साथ भौतिक एवम् अभौतिक पूँजी को भी सम्मिलित किया। फ्रीडमैन ने बहुत स्पष्ट एवम् व्यापक मुद्रा के माँग फलन को व्युत्पन्न किया। फ्रीडमैन का माँग फलन कीमत स्तर, बॉण्ड, इक्विटी, आय, कीमत स्तर में परिवर्तन की दर आय और रुचि चर पर निर्भर करता है।

7.6 शब्दावली

- **एसेट पोर्टफोलियो** - सम्पत्ति सूची
- **मौद्रिक आय** - मौद्रिक रूप में व्यक्त आय
- **उत्पादन फलन** - उत्पादन तथा उत्पादन साधनों के बीच विद्यमान फलनात्मक सम्बन्ध
- **सीमान्त प्रतिस्थापन की दर** - X वस्तु की एक इकाई पाने के लिए Y वस्तु की छोड़ी जाने वाली मात्रा
- **कीमत रेखा** - दो वस्तुओं ग तथा ल के कीमत अनुपात को व्यक्त करती है।
- **वास्तविक आय** - मौद्रिक आय में कीमत से भाग देकर वास्तविक आय ज्ञात की जाती है।
- **उपयोगिता** - इच्छा को सन्तुष्ट करने की क्षमता

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3. फ्रीडमैन के परिमाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में कौन सा कथन सहीं नहीं है।

उत्तर - 3(द)

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Seth, M.L. (2010) : '*Money Banking and International Trade*', Published by – Laxmi narayan Agrawal, Agra.
- Vaish, M.C. (1989) : '*Money Banking and International Trade'*, Published By – Wiley Eastern Limited.
- Mithani, D.M. (2004), '*Macro Economics'*, Published by Himalaya Publishing House.
- Gupta, S.B. (1988), '*Monetary Economics'* – Institutions, Theory and Policy, Published by S. Chand & Co. Pvt. Ltd.
- Shapirio, Edward (1989) '*Macro Economic Analysis*' Published by Galgotia Publications Pvt. Ltd.

7.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सिंह, एस.के. (2010) 'लोक वित्त के सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- सिन्हा, वी. सी. (2009) 'अर्थशास्त्र', बी.ए. द्वितीय वर्ष, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
- लाल, एस.एन. (2004), मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
- मिश्र, जे.पी. (2008) 'अर्थशास्त्र' (मुद्रा एवं बैंकिंग), बी0ए0 द्वितीय वर्ष हेतु, विज्डम पब्लिकेशन्स, वाराणसी।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
2. स्पष्ट कीजिए कि फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।
3. इस बात की व्याख्या कीजिए कि कैसे मिल्टन फ्रीडमैन का परिमाण सिद्धान्त मूलतः मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है।

इकाई 8 : कीन्स का मुद्रा माँग तथा ब्याज का सिद्धान्त
(UNIT 8 : KEYNESIAN THEORY OF DEMAND FOR MONEY AND RATE OF INTEREST)

8.1 प्रस्तावना
8.2. उद्देश्य
8.3 ब्याज की परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धान्त
8.4 कीन्स का मुद्रा माँग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त
 8.4.1 मुद्रा की माँग (तरलता-अधिमान)
 8.4.2 मुद्रा की पूर्ति
 8.4.3 ब्याज दर का निर्धारण
 8.4.4 कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना
8.5 अभ्यास प्रश्न
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह अठारहवीं इकाई है। इससे पूर्व आपने मुद्रा के विभिन्न पक्षों को पढ़ा होगा। कीन्स का मुद्रा माँग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रस्तुत इकाई में कीन्स के ब्याज दर का सिद्धान्त के अन्तर्गत मुद्रा की माँग एवं पूर्ति, ब्याज दर का निर्धारण, सिद्धान्त की आलोचनाएं आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप कीन्स के मुद्रा माँग एवं ब्याज दर के सिद्धान्त को समझ सकेंगें तथा इसका समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ✓ बता सकेंगे कि ब्याज दर से क्या तात्पर्य है।
- ✓ बता सकेंगे कि ब्याज दर के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं।
- ✓ बता सकेंगे कि कीन्स का मुद्रा माँग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त क्या है।
- ✓ समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में कीन्स के ब्याज सिद्धान्त का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।

8.3 ब्याज की परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धान्त

ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले में पूँजीपति को दिया जाता है। उत्पादन के पांच साधनों में पूँजी एक महत्वपूर्ण साधन है। ब्याज, पूँजी की सेवाओं का पुरस्कार है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की अलग-अलग परिभाषा दी है और इसके निर्धारण के लिए अलग- अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। ब्याज की विभिन्न परिभाषाएं एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

परिभाषाएं:

मेयर्स के अनुसार, *''ब्याज उस कीमत को कहते हैं जो उधार देने योग्य कोषों के प्रयोग के बदले दिया जाता है।''*

प्रो. विक्सेल के अनुसार, *''ब्याज पूँजी के उपयोग के लिए ऋणियों द्वारा पूँजीपतियों को उनके त्याग के बदले में दिया जाने वाला भुगतान है।''*

कीन्स के अनुसार, *''ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।''*

सेलिगमैन के अनुसार, *''ब्याज पूँजी कोष के बदले में मिलने वाला पारितोषण है।''*

ब्याज के सिद्धान्त:

1. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (रिकार्डो, मार्शल, पीगू आदि द्वारा प्रतिपादित)।
2. ऋण-देय कोष सिद्धान्त (प्रो. के. विक्सेल द्वारा प्रतिपादित)।
3. कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त।
4. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (प्रो. हिक्स एवं प्रो. लर्नर द्वारा प्रतिपादित)।

8.4 कीन्स का मुद्रा माँग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त

प्रो. कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज दर का सिद्धान्त 'तरलता-अधिमान' पर आधारित है। इसीलिए इनके सिद्धान्त को ब्याज का तरलता-अधिमान सिद्धान्त भी कहा जाता है। कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "General Theory of Employment, Interest and Money" में ब्याज सम्बन्धी अन्य सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया है कि ब्याज 'नकदी की कीमत' अथवा 'तरलता के परित्याग का पुरस्कार' है। कीन्स के अनुसार, ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर करता है। मुद्रा की माँग का अर्थ है कि व्यक्ति मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने को माँगते हैं तथा मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है किसी समय प्राप्त मुद्रा की कुल मात्रा। मुद्रा की पूर्ति का

निर्धारण मुद्रा के अधिकारी की नीति तथा निर्णय के अनुसार होता है अर्थात् मुद्रा की पूर्ति को मुद्रा-अधिकारी द्वारा घटाया एवं बढ़ाया जा सकता है, परन्तु मुद्रा की माँग लोगों तथा व्यवसायों के तरलता-अधिमान की व्यवस्था द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार, जब देश में किसी समय मुद्रा की एक निश्चित मात्रा चलन में है तो ब्याज दर लागों तथा व्यवसायों के उस समय के तरलता-अधिमान द्वारा निर्धारित होगी। कीन्स के शब्दों में, *'ब्याज वह कीमत है जो धन को नकदी के रूप में रखने की इच्छा तथा उपलब्ध नकदी की मात्रा में बराबरी स्थापित करती है।'* इस प्रकार, ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। तरलता-अधिमान सिद्धान्त कीन्स के रोजगार एवं आय सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग है।

8.4.1 मुद्रा की माँग (तरलता-अधिमान)

प्रो. कीन्स के अनुसार मुद्रा की माँग का अर्थ है मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने की माँग। कीन्स ने मुद्रा की माँग को तरलता-अधिमान कहा है। तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में परिवर्तित करा सके। कीन्स ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति को आय मिलने के पश्चात् अपनी आय के सम्बन्ध में दो निर्णय लेने पड़ते हैं कि वह आय का कितना भाग व्यय करे तथा कितना भाग भविष्य के लिए बचत करके रखे। इसके साथ ही उसे यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि वह भविष्य के लिए रखे जाने वाली बचत को किस रूप में रखे। एक तरीका यह है कि वह अपनी बचत को नकद रूप में रखे या दूसरा तरीका है कि वह इस बचत से अन्य व्यक्ति को उधार दे दे। उधार देने पर उसे तरलता का त्याग करना पड़ेगा। सामान्यतः सभी व्यक्ति अपने धन को नकद अर्थात् तरल रूप में रखना पसन्द करते हैं। इसलिए वह तब तक तरलता का त्याग नहीं करेंगे जब तक उन्हे ब्याज के रूप में कोई पुरस्कार न दिया जाय। इस प्रकार, ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

तरलता-अधिमान के कारण: प्रो. कीन्स के अनुसार लोग मुद्रा को सदैव नकद रूप में रखना चाहते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

1. लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य : लोगों को आय एक निश्चित अवधि में मिलती है जबकि उनको भुगतान की आवश्यकता निरन्तर रहती है। अतः अपने प्रतिदिन के लेन-देन सम्बन्धी कार्य करने के लिए लोगों को अपनी आय का कुछ अंश नकद रूप में रखना होता है। लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य के दो पक्ष हैं:(क) उपभोक्ता की दृष्टि से आय पक्ष: एक उपभोक्ता अपने प्रतिदिन के कार्य सम्पादित करने हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखेगा, यह उसकी आय के आकार और आय प्राप्ति की समयावधि पर निर्भर करेगा। इसे आय पक्ष कहा जाता है। (ख) व्यवसायियों या साहसियों की दृष्टि से व्यवसायिक पक्ष: एक उत्पादक को कच्चा माल खरीदने, मजदूरी देने आदि कार्यों हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखना होगा, यह उसके टर्नओवर पर निर्भर करेगा। इसे व्यवसाय पक्ष कहा जाता है।
2. दूरदर्शिता उद्देश्य: प्रत्येक व्यक्ति को बीमारी, दुर्घटना आदि आकस्मिकताओं, अप्रत्याशित आवश्यकताओं अथवा संकटों का सामना करने के लिए कुछ मुद्रा नकद या तरल रूप में रखनी पड़ती है। इसे दूरदर्शिता उद्देश्य कहा जाता है। इसमें कितनी मात्रा में मुद्रा नकद रूप में रखी जायेगी, यह व्यक्ति के आय-स्तर पर निर्भर करता है। सामान्यतः यह ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।
3. सट्टा उद्देश्य: अनेक व्यक्ति (विशेषकर सट्टेबाज) भविष्य में बाजार में होने वाले ब्याज की दर में परिवर्तनों से लाभ उठाने के लिए भी धन को नकद रूप में अपने पास रखना चाहते हैं। जो व्यक्ति

वर्तमान ब्याज दर को नीचा समझते हैं, वे अधिक मात्रा में धन को नकद रूप में रखना चाहेंगे जिससे भविष्य में ब्याज दर बढ़ने पर वे नकद उधार देकर अधिक लाभ कमा सकें अर्थात् ब्याज की दर ऊँची होने की सम्भावना होगी तो नकदी की माँग बढ़ जायेगी। परन्तु जो व्यक्ति वर्तमान ब्याज दर को ऊँचा समझते हैं, वे कम मात्रा में धन को नकद रूप में रखेंगे, क्योंकि उन्हें भविष्य में ब्याज दर कम हो जाने पर उधार देने से कम लाभ मिलने की आशा होगी अर्थात् भविष्य में ब्याज की दर में कमी की सम्भावना होने पर नकदी की माँग कम हो जायेगी। इस प्रकार, सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग और ब्याज दर में विपरीत सम्बन्ध होता है तथा सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की माँग ब्याज की वर्तमान दर की अपेक्षा भविष्य में सम्भावित दर से अधिक प्रभावित होती है।

कीन्स के मत में, उपरोक्त में से लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य दोनों पर्याप्त रूप से स्थायी रहते हैं और प्रमुखतः आय-स्तर के अनुसार परिवर्तित होते हैं तथा ब्याज दर का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु, सट्टा उद्देश्य से हुई नकदी की माँग मुख्यतः ब्याज दर पर ही निर्भर करती है।

लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_1) की माँग (L_1) आय (Y) का फलन है। अर्थात्

$$M_1 = L_1(Y)$$

इसका अर्थ है कि L_1 आय पर निर्भर करता है। आय में परिवर्तन होने पर L_1 भी परिवर्तित हो जाता है।

दूसरी ओर, सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_2) की माँग (L_2) ब्याज दर (r) का फलन है। अर्थात्

$$M_2 = L_2(r)$$

इसका अर्थ है कि L_2 ब्याज दर पर निर्भर करता है। ब्याज दर में परिवर्तन होने पर L_2 भी परिवर्तित हो जाता है।

इस प्रकार, मुद्रा की कुल मात्रा (M) की नकदी के रूप में माँग (L) ब्याज दर तथा आय-स्तर दोनों पर निर्भर करती है अर्थात्

$$M = L(rY)$$

आय और नकदी की माँग में धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् आय बढ़ने पर नकदी की माँग भी बढ़ जाती हैं। ब्याज दर और नकदी की माँग में ऋणात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज दर बढ़ने पर नकदी की माँग कम हो जाती है।

चित्र 1

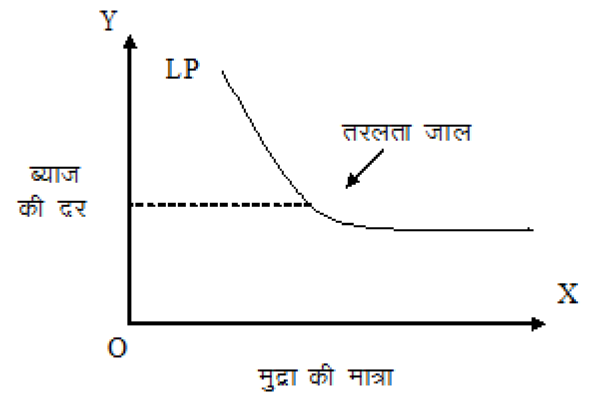

चित्र संख्या 1 में मुद्रा की माँग एवं ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध को दर्शाया गया है। ब्याज की दर कम होने पर नकदी की माँग (तरलता-अधिमान) रेखा नीचे की ओर गिरती जाती है। इसका अर्थ है कि नकदी की माँग बढ़ रही है। चित्र से एक और विशेषता का पता चलता है कि तरलता-अधिमान रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर होने की प्रवृत्ति रखता है, जिससे प्रदर्शित होता है कि ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार नहीं देंगे। ऐसी स्थिति को कीन्स ने तरलता जाल की संज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर कम होने पर उधार देने में जोखिम अधिक होता है।

8.4.2 मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की कुल पूर्ति में सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा साख-मुद्रा शामिल किये जाते हैं। मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा अधिकारियों अर्थात् सरकार का नियन्त्रण होता है, इसीलिए एक समय विशेष में मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। मुद्रा की पूर्ति रेखा एक खड़ी रेखा होती है। इसे निम्नलिखित चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है:

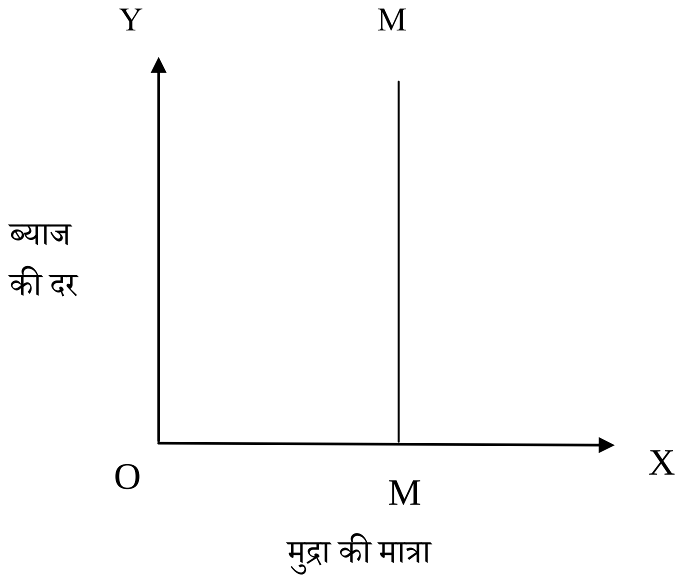

चित्र: 2

8.4.3 ब्याज दर का निर्धारण

ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां पर नकद-मुद्रा की माँग रेखा अर्थात् तरलता-अधिमान (LP) एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा (MM) एक-दूसरे को काटती है। कीन्स ने मुद्रा की पूर्ति रेखा को स्थिर मान लिया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर नकद-मुद्रा की माँग अर्थात् तरलता-अधिमान बढ़ जाने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है और घट जाने पर ब्याज की दर में कमी हो जाती है। इस प्रकार, तरलता-अधिमान (LP) वह परिवर्तनशील तत्व है जिस पर ब्याज की दर निर्भर करती है।

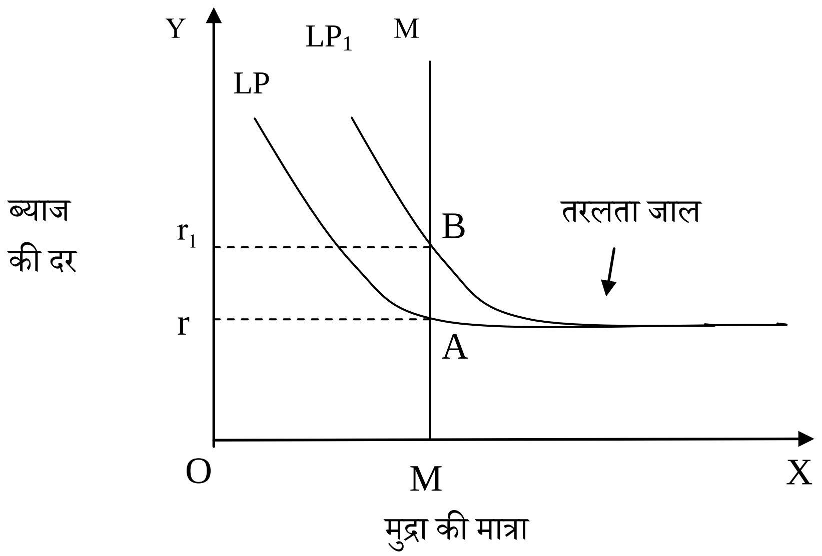

चित्र: 3

चित्र संख्या 3 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को दर्शाया गया है। नकद-मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान को LP वक्र से व्यक्त किया गया है जो विभिन्न ब्याज दरों पर नकद-मुद्रा की माँग को बताती है। यह नीचे की ओर गिरती हुई है, क्योंकि ब्याज की दर और सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी की माँग (L_2) में विपरीत सम्बन्ध होता है। L_1 इस रेखा के ढ़ाल को प्रभावित नहीं करता है क्योंकि यह आय के स्तर पर निर्भर करता है। मुद्रा की पूर्ति को MM रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर होने के कारण MM एक खड़ी रेखा के रूप में है।

चित्र में मुद्रा की पूर्ति OM है। बिन्दु । पर नकद-मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान (LP) एवं पूर्ति (MM) एक दूसरे को काटते हैं, अतः ब्याज दर Or के बराबर निर्धारित होती है। अब यदि आय के स्तर में वृद्धि हो जाये तो इससे तरलता-अधिमान में भी वृद्धि हो जायेगी। इस प्रकार, तरलता-अधिमान का नया वक्र दायें ओर खिसककर LP_1 होगा। मुद्रा की मात्रा के OM पर स्थिर रहने पर LP_1 वक्र MM रेखा को बिन्दु B पर काटता है। इसके कारण ब्याज दर बढ़कर Or_1 हो जाती है।
एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाये (उदाहरण के लिए, चित्र 3 के अनुसार यदि ब्याज दर व्त पर न्यूनतम हो जाये) तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। अतः वे समस्त मुद्रा को नकद रूप में अपने पास रखना चाहिए। इस कारण से LP रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर रहेगा जिससे प्रदर्शित होता है कि ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। तरलता-अधिमान की इस विशेषता के कारण ब्याज की दर कभी शून्य नहीं हो सकती है। ब्याज की दर के न्यूनतम बिन्दु पर नकदी की माँग अनन्त हो जाती है जिससे ब्याज की दर और नीचे नहीं जाती है।

8.4.4 कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना

कीन्स का ब्याज दर का सिद्धान्त एक यथार्थवादी एवं प्रावैगिक सिद्धान्त है। यह ब्याज दर के निर्धारण की व्याख्या उपयुक्त ढंग से करता है। यह प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है। जहां प्रतिष्ठित सिद्धान्त मुद्रा को 'विनिमय का माध्यम' मानता है वहीं कीन्स मुद्रा के 'मूल्य-संचय' के कार्य को भी विशेष महत्व देता है। विभिन्न विशेषताओं के होते हुए भी इस सिद्धान्त में कुछ कमियां हैं जिसके आधार पर इसकी आलोचनाएं की जाती हैं। यह आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

1. **यह सिद्धान्त पूँजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता:** पूँजी में उत्पादकता का गुण होता है। मुद्रा की माँग मुद्रा को नकद अथवा तरल रूप में रखने के अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं में निवेश करने के लिए भी की जाती है। ऋणी व्यक्ति पूँजी का उत्पादक कार्यों में उपयोग कर अपने उत्पादन एवं आय को बढ़ाता है परन्तु प्रो. कीन्स द्वारा प्रतिपादित तरलता-अधिमान सिद्धान्त मुद्रा की माँग के अन्तर्गत पूँजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता है।
2. **कीन्स का सिद्धान्त एकपक्षीय है:** कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि यह केवल मुद्रा की माँग पर ही विशेष जोर देता है, मुद्रा की पूर्ति पर कोई ध्यान नहीं देता है। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति को स्थिर मानकर उसकी उपेक्षा कर देता है।
3. **दीर्घकाल में ब्याज-दर के निर्धारण पर ध्यान नहीं देता है:** पूँजी के विनियोग की दृष्टि से अल्पकालीन ब्याज-दर की तुलना में दीर्घकालीन ब्याज-दर अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु यह सिद्धान्त अल्पकाल में ब्याज-दर के निर्धारण की व्याख्या को करता है। दीर्घकाल में ब्याज के निर्धारण पर इसमें कोई ध्यान नहीं दिया गया है।
4. **यह सिद्धान्त संकुचित है:** यह सिद्धान्त एक संकुचित सिद्धान्त है। इसमें ब्याज दर के निर्धारण के प्रमुख तत्व 'तरलता' की इच्छा केवल तीन उद्देश्यों- लेन-देन, दूरदर्शिता एवं सट्टा हेतु किया जाना बताया गया है जबकि इसके अन्य भी कई उद्देश्य होते हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।
5. **विकसित देशों हेतु उपयुक्त सिद्धान्त:** कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त विकसित देशों हेतु उपयुक्त है जहां पर मुद्रा बाजार विस्तृत एवं संगठित होता है। अविकसित देशों में संगठित मुद्रा बाजार के अभाव में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6. **अनिश्चित सिद्धान्त:** यह सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति द्वारा होता है परन्तु मुद्रा की माँग अर्थात् तरलता-अधिमान (विशेषतः सट्टा उद्देश्य हेतु) आय पर निर्भर होती है। आय-स्तर का पता हम तब तक नहीं लगा सकते जब तक कि ब्याज की दर ज्ञात न हो। इस प्रकार, कीन्स का सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है।

8.5 अभ्यास प्रश्न

1. ब्याज से क्या आशय है ?
2. ब्याज के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
3. **रिक्त स्थान भरिए।**

   (क) ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त का प्रतिपादन .... ने किया है।

   (ख) सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग और ब्याज दर में .... सम्बन्ध होता है ।

   (ग) ब्याज की दर के न्यूनतम बिन्दु पर नकदी की माँग .... हो जाती है जिससे ब्याज की दर और नीचे नहीं जाती है।
4. **बहुविकल्पीय प्रश्न।**

1. ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा को तरल रूप में रखने के उद्देश्य हैं:
   (अ) लेन-देन, (ब) दूरदर्शिता,
   (स) सट्टा, (द) सभी।
2. निम्नलिखित में से किस उद्देश्य से की गयी तरलता की माँग ब्याज सापेक्ष होती हैः
   (अ) लेन-देन, (ब) दूरदर्शिता,
   (स) सट्टा, (द) सभी।

8.6 सारांश

ब्याज, पूँजी की सेवाओं का पुरस्कार है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं एवं सिद्धान्त दिये हैं। इनमें कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज दर का 'तरलता-अधिमान' पर आधारित सिद्धान्त प्रमुख है। कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक General Theory of Employment Interest and Money में स्पष्ट किया है कि ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है। कीन्स के अनुसार, ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर करता है। मुद्रा की माँग का अर्थ है कि व्यक्ति मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने को माँगते हैं तथा मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है किसी समय प्राप्त मुद्रा की कुल मात्रा। जब देश में किसी समय मुद्रा की एक निश्चित मात्रा चलन में है तो ब्याज दर लागों तथा व्यवसायों के उस समय के तरलता-अधिमान द्वारा निर्धारित होगी। प्रो. कीन्स ने मुद्रा की माँग को तरलता-अधिमान कहा है। उनके अनुसार लोगों के मुद्रा को नकद रूप में रखने के तीन कारण हैं- 1. लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य, 2. दूरदर्शिता उद्देश्य तथा 3. सट्टा उद्देश्य। मुद्रा की कुल पूर्ति में सिक्के, पत्र-मुद्रा तथा साख-मुद्रा शामिल किये जाते हैं। मुद्रा की पूर्ति पर मुद्रा अधिकारियों अर्थात् सरकार का नियन्त्रण होता है, इसीलिए एक समय विशेष में मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है और इसमें कोई परिवर्तन नहीं होते हैं। ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहां पर नकद-मुद्रा की माँग रेखा अर्थात् तरलता-अधिमान एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा एक-दूसरे को काटती है। कीन्स ने मुद्रा की पूर्ति रेखा को स्थिर मान लिया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर नकद-मुद्रा की माँग अर्थात् तरलता-अधिमान बढ़ जाने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है और घट जाने पर ब्याज की दर में कमी हो जाती है। इस प्रकार, तरलता-अधिमान ;स्च्द्ध वह परिवर्तनशील तत्व है जिस पर ब्याज की दर निर्भर करती है। एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाती है तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है।

8.7 शब्दावली

- **तरलता:** तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में परिवर्तित करा सके।
- **तरलता-अधिमान:** मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने की माँग को तरलता-अधिमान कहा जाता है।
- **उधार बन्द:** उधार बन्द एक ऐसी स्थिति है जिसमें ब्याज की दर बहुत कम हो जाने के कारण लोग उधार देना बन्द कर देते हैं।
- **तरलता-जाल:** एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाये तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनायेंगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। इसमें मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान अनन्त होता है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर1: ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले में पूँजीपति को दिया जाता है।

उत्तर2: ब्याज के विभिन्न सिद्धान्त हैं - प्रतिष्ठित सिद्धान्त, ऋण-देय कोष सिद्धान्त, तरलता-अधिमान सिद्धान्त एवं आधुनिक सिद्धान्त।

उत्तर3: रिक्त स्थान भरिए।

(क) प्रो. कीन्स, (ख) विपरीत, (ग) अनन्त।

उत्तर4: बहुविकल्पीय प्रश्न।

क . (द), ख . (स)।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.
- Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Laxmi Narain Agarwal, Agra.
- सेठी, टी.टी. समष्टि (2010): समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

8.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Dillard, Dudley : *The Economics of J.M. Keynes,* 1948.
- Fisher, Irving : *The Theory of Interest,* 1954.
- Hensen, Alvin H. : *A Guide to Keynes,* 1953.
- Keynes, J.M. : *TheGeneral Theory of Employment, Interest amd Mone,.*1936.

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. *'ब्याज तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।'* इस कथन के आलोक में कीन्स तरलता-अधिमान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. ब्याज के तरलता-अधिमान सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

(1) ब्याज की विभिन्न परिभाषाएं।

(2) तरलता-अधिमान के कारण।

(3) तरलता-जाल की स्थिति।

(3) तरलता-अधिमान सिद्धान्त में ब्याज-दर निर्धारण का बिन्दु।

इकाई 9 : मुद्रा की माँग कीन्सोत्तर सिद्धान्त
(UNIT 9 : POST-KEYNESIAN THEORY OF DEMAND FOR MONEY)

9.1 प्रस्तावना
9.2. उद्देश्य
9.3 केन्सोत्तरअर्थशास्त्र
9.4 प्रमुख कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री
9.5 बामोल का भण्डार दृष्टिकोण
9.5.1 क्रय-विक्रय के उद्देश्य से माँग का विश्लेषण
9.6 एहतियाती मुद्रा का माँग सिद्धान्त
9.7 टोबिन का तरलता अधिमान फलन
9.8 उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण
9.9 अभ्यास प्रश्न
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाईयों में आपने मुद्रा के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में विस्तृत अध्ययन किया होगा, जिसमें विभिन्न अर्थशास्त्रियों जिनमें मार्शल, पीगू, फिशर, राबर्टसन आदि के मौद्रिक समग्रों का अध्ययन सम्मिलित रहा है। कीन्स ने इसमें एक नया आयाम जोड़ा और कीन्स के बाद के अर्थशास्त्रियों ने कीन्स के सामान्य सिद्धान्त (1936) में निहित विभिन्न मौद्रिक विचारों की अपूर्णता को पूर्ण करने का प्रयास किया है। जिसे कीन्सोत्तर सिद्धान्त (Post Keynesian Theories) कहा जाता है और इससे संबंधित अर्थशास्त्री कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री कहे जाते है।

9.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- ✓ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र के बारे में जान सकेंगे।
- ✓ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों के बारे में जान सकेंगे।
- ✓ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं प्रतिनिधि के बारे में जान सकेंगे।
- ✓ कीन्सोत्तर मुद्रा माँग के विभिन्न प्रत्यागमों की एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

9.3 कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य वास्तविक आर्थिक समस्याओं को आर्थिक विश्लेषण से सम्बद्ध करते हुए कैसे अर्थव्यवस्था कार्य करती है, की स्पष्ट समझ उपलब्ध कराना है। इसका प्रमुख उद्देश्य ‘सामान्य सिद्धान्त’ को सामान्यीकृत (Eichner and Kregel, 1975, Robinson, 1956) करने हेतु अपूर्ण कीन्सीयन क्रांति को पूर्ण करना है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्स के ‘सामान्य सिद्धान्त’ का आधार है उसी तरह कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का आधार भी प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र में प्रभावपूर्ण माँग से आशय संसाधनों की दुर्लभता के बजाय माँग की दुर्लभता से है जिसका सामना आधुनिक अर्थशास्त्र को करना पड़ता है, जिसमें उत्पादन सामान्तया प्रभावपूर्ण माँग द्वारा सीमित होता है यद्यपि यह स्वीकार किया जाता है कि वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आपूर्ति में विभिन्न प्रकार के अवरोध मौजूद है। नव-प्रतिष्ठित मुख्यधारा (Neo-classical main stream economics) के अर्थशास्त्र की स्पष्ट एवं अस्पष्ट आलोचना इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

वे आर्थिक विचार जो कीन्सोत्तर के रूप में वर्गीकृत किये जाते है उनका एक लम्बा इतिहास रहा है और यह जितना कीन्स तथा केलेकी की विचारधाराओं को प्रदर्शित करता है उतना ही प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मार्क्स की विचारधारा को भी। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की तीन अलग परम्पराओं को देखा जा सकता है।

प्रथम परम्परा मार्शल से आरम्भ होती है और इसकी जड़े कीन्स के Treatise on Money तथा Treatise on Money में सन्निहित है। यह अनिश्चितता पर जोर देती है। डेविडसन (1978), मिन्सकी (1975), कान्ह (1978), डेविडसन (1992), विनट्राब (1958), टार्सिस (1939, 1947), कीन्स (1936) से सम्बद्ध है। इस परम्परा में समग्र माँग को नियन्त्रित करने की आर्थिक नीतियों में साथ ही साथ, आय नीतियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि मुद्रा मजदूरी का कीमतों के निर्धारण में महत्व है।

दूसरी परम्परा जॉन राबिन्सन एवं उनके अनुयायियों विशेष रूप से केलेकियन के योगदान को स्वीकार करती है। यह निवेश माँग को प्रभावपूर्ण होने के साथ ही प्रभावपूर्ण माँग की असफलता पर जोर देती है। समग्र माँग का नियन्त्रण तथा संगठन जिसमें निवेश पर जोर दिया जाता है इस प्रत्यागम का महत्वपूर्ण नीति निदान है।

तीसरी वेबलेन की संस्थागत परम्परा है। यह प्रक्रिया एवं उद्भव आधारित है और यह आर्थिक व्यवस्था में प्रावैगिक एवं शक्ति/वर्गीय ढ़ाँचे पर जोर देती है। ये संस्थागत तथा संगठनात्मक ढ़ाँचे मूलभूत कार्यविधि को बताते है जहाँ संसाधनों का आंवटन होता है। आर्थिक व्यवहार के निर्धारण में संस्थाओं और सभ्यताओं की महत्वपूर्ण भूमिका कीन्सोत्तर विशेषता है।

यद्यपि इन तीनों परम्पराओं में विभिन्नताएं हैं, साथ ही साथ कुछ निश्चित विशेषताएं है जो इन सबमें है और आर्थिक विश्लेषण की वास्तविक आर्थिक समस्याओं से संगतता एवं संसार को सामान्य पुरूषों एवं महिलाओं के रहने के लिए एक अच्छा स्थान बनाने एवं अधिक न्याययुक्त एंव समतामूलक समाज को बनाने पर जोर देती है। (To make the world a better place for ordinary men and women to produce a more just and equitable society, Harcourt-1992) वर्ग, शक्ति तथा आय एवं सम्पत्ति के वितरण के मुद्दे इसके विश्लेषण के केन्द्र में हैं।

वास्तव में कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र वास्तविक आर्थिक समस्याओं द्वारा समयोपरि में सृजन करके, उत्पादन करके, वितरण करके एवं अवशेष सामाजिक अतिरेक का उपयोग करके उत्पादन के विस्तार के अध्ययन से सम्बद्ध है। विस्तार पथ असमान होते हैं और आर्थिक व्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार अप्रत्याशित तरीके से परिवर्तित हो जाते हैं। जिससे आर्थिक प्रक्रियायें अस्थिर हो जाती है और चक्रीय एंव संचयी कारणों के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र विश्लेषण 'साम्यहीन अर्थशास्त्र' से जुड़ा हुआ है। कीन्सोत्तर विश्लेषण प्रविधि 'विवेचन वास्तविकता' है। इसकी तर्क या निर्णय प्रविधि न तो आगमन है और न ही निगमन है। वरन् Retroduction या Retroduction है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र एक आर्थिक सम्प्रदाय है जिसकी जड़े जॉन मेनार्ड कीन्स के सामान्य सिद्धान्त में हैं। यद्यपि इसमें उत्तरवर्ती एवं महत्वपूर्ण विकास बहुत सीमा तक माइकेल केलेकी, जॉन राबिन्सन, निकोलस काल्डर तथा पाल डेविडसन द्वारा प्रभवित हुआ। कीन्स के जीवनी पर लार्ड स्कीडेल्सकी ने लिखा है कि कीन्सोत्तर सम्प्रदाय कीन्स के कार्यो में सन्निहित उद्देश्य भाव से निकट रूप से, विशेष रूप से प्रचलित मौद्रिक सिद्धान्त और मुद्रा की तटस्थता को अस्वीकार करने से जुड़ा हुआ है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि दो अन्य प्रमुख कीन्सियन सम्प्रदायों - नव-कीन्सवादी जो 1950 तथा 1960 के दशकों में प्रचलित, प्रभावपूर्ण तथा स्वीकार्य था, जो नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के वैचारिक धागों से बंधकर 1980 के दशक से मुख्यधारा के समष्टि अर्थशास्त्र के रूप में प्रभावी बना हुआ है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र को कीन्स के विचारों एवं अन्त्रदृष्टि के प्रकाश में आर्थिक सिद्धान्तों के पुननिर्माण के रूप में देखा जा सकता है। ऐसा होते हुए भी शुरूआती दिनों में, 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध में नव-कीन्सवादियों जैसे जॉन राबिन्सन ने स्वयं को कीन्स से दूर करने का प्रयास किया। कुछ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने कीन्स से भी ज्यादा मजदूर स्नेही नीतियों एवं पुनर्वितरण पर प्रगतिगामी विचार व्यक्त किये।

प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की एक विशेषता है और माँग दीर्घकाल एवं अल्पकाल दोनों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिससे एक प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की प्राकृतिक या स्वचालित प्रवृत्ति नहीं पायी जाती है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का सकारात्मक योगदान यह है कि यह केवल समग्र रोजगार के सिद्धान्त तक ही सीमित नहीं रहता है वरन् उससे आगे बढ़कर आय वितरण, वृद्धि, व्यापार, और विकास जिसमें माँग महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, को भी समाहित करता है जबकि नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में ये सब केवल आपूर्ति पक्ष द्वारा ही निर्धारित होते है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री प्रथम है जिन्होंने इस मुद्दे को जोरदार तरीके से उठाया कि मुद्रा की आपूर्ति, बैंक साख की माँग का प्रत्युत्तर है। जिससे केन्द्रीय बैंक एक समय में या तो मुद्रा की मात्रा को या ब्याज दर को, लेकिन दोनों का एक साथ चुनाव नहीं कर सकती है। इस विचार को मौद्रिक नीतियों में

तेजी से सम्मिलित किया गया, जिसमें मुद्रा की मात्रा के बजाय ब्याज दर को लक्षित किया गया। वित्त के क्षेत्र में हिम्न मिन्सकी ने वित्तीय अस्थिरता/भंगुरता के आधार पर वित्तीय संकट का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसनें वर्तमान समय में लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

9.4 प्रमुख केन्सोत्तर अर्थशास्त्री

कीन्स के बाद के प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी के प्रमुख अर्थशास्त्री निम्न है-

1. विक्टोरिया चिक	2. पाल डेविडसन	3. एल्फ्रेड एचनर
4. ज्याफ हरकोर्ट	5. निकोलस केल्डार	6. माइकेल केलेकी
7. हिम्न मिंसकी	8. बेसिल मूर	9. लुइगी पेसिन्टी
10. जॉन राबिन्सन	11. जी.एल.एस. शैक्ल	12. एन्थोनी थिंरवाल
13. सिडनी विन्ट्राब	14. जान क्रेगल	15. एल रेण्डल रे
16. फ्रेडरिक एस.ली	17. फर्नान्डो कार्डिम डि कार्वाल्हो	

प्रमुख कीन्सोत्तर सिद्धान्त

- रोजगार गारन्टी, कन्सास सिटी स्कूल
- मौद्रिक परिभ्रमण सिद्धान्त
- नव-चार्टलिज्म;

9.5 बामोल का भण्डार दृष्टिकोण

कीन्स के सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के स्थान पर विलियम बामोल ने 1952 में क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग से संबंधित एक नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बामोल व्यावसायिक फर्मो द्वारा वस्तुओं के भण्डार प्रबन्ध के दृष्टिकोण से क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग की व्याख्या की। बामोल का मत है कि जिस प्रकार व्यावसायिक फर्मे वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग में परिवर्तन होने की दशा में क्रय-विक्रय की सुविधा के लिए भण्डार रखते है उसी प्रकार व्यक्ति भी मुद्रा का भण्डार रखते है, क्योंकि इससे वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय-विक्रय में सुवधिा होती है।

भण्डार संचय पर लागत आने के कारण उसे कम करने के लिए वस्तुओं के अनुकूलतम भण्डार की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्यक्तियों को भी क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा का अनुकूलतम भण्डार रखना होता है। उसी प्रकार जब व्यक्ति भी क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा रखते है तो उनको भी लागत उठानी पड़ती है क्योंकि वे उस ब्याज का परित्याग करते है जो उन्हें तब प्राप्त होती है जब वे अपनी सम्पत्ति बचत जमा के रूप में रखते है। परित्याग की गयी यह ब्याज आय ही क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा संचय की लागत होती है।

केन्ज से भिन्न बामोल यह तर्क प्रस्तुत करता है कि क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग ब्याज दर पर निर्भर करती है। ब्याज दर में वृद्धि के साथ लोग मुद्रा संचय के एक भाग को ब्याज अर्जित करने वाली बचत जमाओं में लगाने के लिए प्रेरित होंगे।

9.5.1 क्रय-विक्रय के उद्देश्य से माँग का विश्लेषण

बामोल एक ऐसे व्यक्ति के क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा को माँग का विश्लेषण करते है जिसे प्रत्येक माह (निश्चित अन्तराल पर) आय प्राप्त होती है तथा उसे वह एक स्थिर दर से खर्च करता है। रेखाचित्र 1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

माना व्यक्ति को प्रत्येक माह के प्रथम दिन 12000 रू. वेतन चेक प्राप्त होता है तथा प्रथम दिन ही नकद करा लेता है तथा उसे धीरे-धीरे सम्पूर्ण माह 400 रू. प्रतिदिन व्यय करता है। यह सरलतापूर्वक

देखा जा सकता है कि माह में उसका औसत मुद्रा संचय 12000/2 त्र 6000 रू. होगा। (एक माह की 15 वीं तिथि के पूर्व उसके पास 6000 रू. से अधिक तथा 15 वीं तिथि के बाद 6000 रू. से) जो 6000 रू. के समान औसत मुद्रा संचय बिन्दु-रेखा द्वारा प्रदर्शित है। अतः प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मुद्रा के प्रबंध करने की अनुकूलम रणनीति है। सरल रूप में उत्तर नकारात्मक है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति को उस ब्याज की हानि हो रही है जो वह अर्जित करने वाली बचत-जमाओं में जमा किये होता है। वह अपने मौद्रिक शेषों का इस प्रकार प्रबन्ध कर सकता है जिससे कि कुछ ब्याज आय भी प्राप्त हो सकें। माना कि माह के प्रथम दिन अपना सम्पूर्ण वेतन निकालने के स्थान पर वह केवल आधा वेतन निकालता है (अर्थात् 6000 रू. नकद निकाल लेता है तथा शेष 6000 रू. उस बचत खाते में जमा कर देता है जिससे उसे 5 प्रतिशत ब्याज प्राप्त होता है तथा उसका व्यय प्रतिदिन 400 रू. स्थिर बना रहता है इसे रेखाचित्र 2 द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

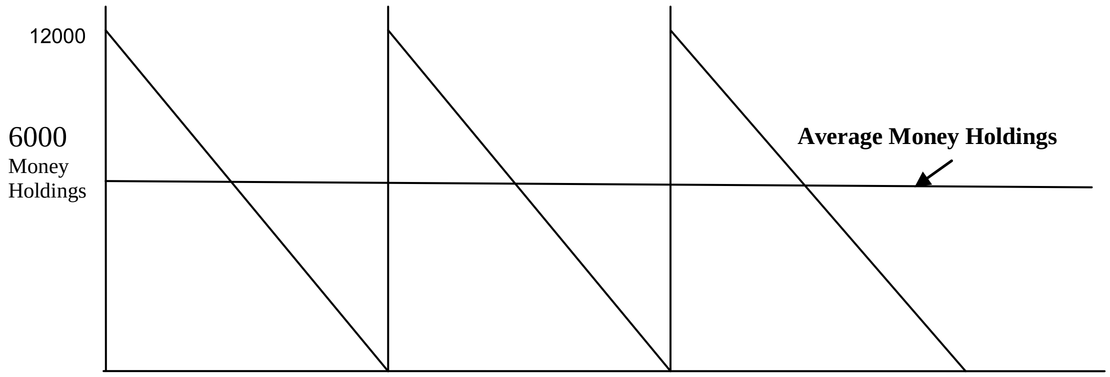

नकद भुगतान के प्रवाह तथा क्रय-विक्रय उद्देश्य से मुद्रा की माँग

रेखाचित्र 1

यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक माह के 15 वें दिन के अन्त में उसका 6000 रू. का मुद्रा संचय कम होते-होते शून्य हो जायेगा। अब वह प्रत्येक माह की 16 वीं तिथि की सुबह 6000 रू. निकाल सकता है और उसके बाद उसे 400 रू. प्रतिदिन के हिसाब से 15 दिनों तक खर्च करता है। यह कोषों को प्रबंध करने की श्रेष्ठ विधि है क्योंकि वह प्रत्येक माह 15 दिन 6000 रू. पर ब्याज अर्जित करेगा। इस मौद्रिक प्रबंध योजना में औसत मुद्रा संचय 6000/2 त्र 3000 रू. होता है।

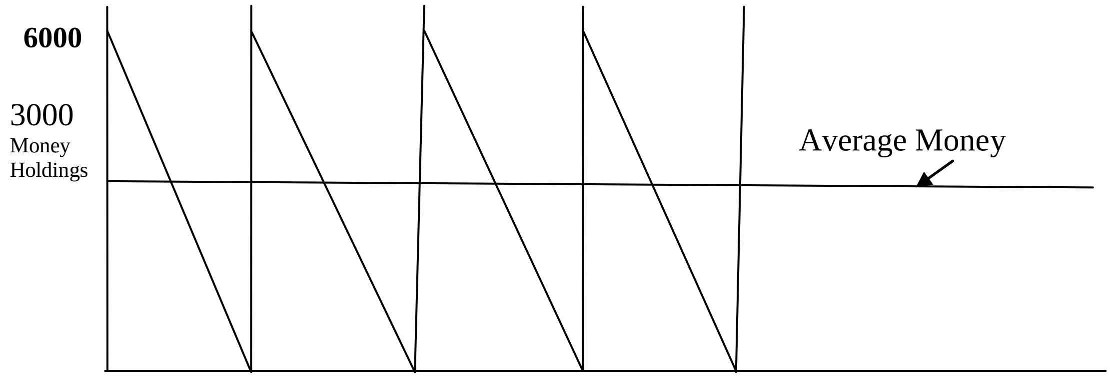

क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग तथा नकद भुगतान प्रवाह

रेखाचित्र 2

बामोल ने यह तर्क दिया है कि मुद्रा संचय की अनुकूलतम धनराशि परित्यान की गयी ब्याज-आय तथा दलाली शुल्क की लागत को न्यूनतम करके निर्धारित की जाती है। बामोल ने इस बात की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है-माना कि वेतन चेक की राशि को C व्यक्ति के बैंक जाने पर प्रत्येक बार उसके द्वारा निकाली गयी औसत धनराशि को ब् नकद निकालने के लिए बैंक तक जाने की बारमबारता को ज् बैंक तक प्रत्येक बार उसके आवागमन में उसके द्वारा सहन की जाने वाली शुल्क को b से प्रदर्शित किया जाता है। जिसे $C = \sqrt{2}/r$

इसका अभिप्राय यह है कि लागत को न्यूनतम करने वाली नकद निकालने की औसत धनराशि दलाली शुल्क के दुगुने तथा व्यक्ति की आय के गुणनफल को ब्याज दर से विभाजित करने से प्राप्त मूल्य का वर्गमूल होता है। इन माडलों के विस्तार का सारांश पाया जा सकता है Barro और Fischer 1976 और Cuthbertson और Barlow 1991, Roley 1985।

9.6 एहतियाती मुद्रा का माँग सिद्धान्त

मुद्रा की एहतियाती माँग उत्पन्न होती है क्योंकि व्यक्ति आय के बारे में अनिश्चित होता है जो उसे प्राप्त होनी चाहिए अथवा जो मुद्रा उसके पास है ''बामोल''। इस तरह अधिक मुद्रा जो एक व्यक्ति रखता है तो उसे मुद्रा पर लागत भी उठानी पड़ती है लेकिन कोई व्यक्ति अधिकतम मुद्रा अपने पास रखता है तो उसे अधिकतम ब्याज की हानि सहन करनी पड़ती है। इसलिए व्यक्ति एहतियाती मुद्रा अपने पास इस तरह रखना चाहता है कि उसे ब्याज की हानि भी न हो और नकद मुद्रा भी पर्याप्त मात्रा में रख सकें। ''Dornbusch and fischer''।

एहतियाती मुद्रा का सिद्धान्त का विक्रय भण्डार सिद्धान्त के सुधार के रूप में हुआ है जो यह कहता है कि आय एवं व्यय में एक निश्चितता होती है। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि आय एवं व्यय का वितरण की जो संभावना है वह ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए ''Miller nad Orr'' ने *''आय एवं वितरण के प्रवाह को अनियमित मानते हुए भण्डार सिद्धान्त का एक ढ़ाँचा तैयार किया।''* Patinkin के अनुसार नियमित अन्तराल पर एक आर्थिक इकाई दी गयी राशि के कुल व्यय का सामना करती है लेकिन इस समयावधि में नकद के आवागमन का समय अनिश्चित होता है।

Barro and Fischer, 1976 and Cuthdertron and Barlow 1991 इन लोगों ने विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन से एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का सार प्रस्तुत किया। Akerlof and Milbourne 1980, Milbrurne 1983 and Buckholtz and wason 1953, इन लोगों ने एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का एक नवीन माडल प्रस्तुत किया।

मुद्रा के भण्डार के महत्व की वजह से मुद्रा को परिसम्पत्ति मानते हुए कई सारे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। परिसम्पत्ति या पोर्टफोलियो प्रारूप वाले स्कूल से संबंधित है जो मुद्रा की माँग को पोर्टफोलियों के चुनाव की समस्या के संदर्भ में देखता है। परिसम्पत्तियों को पोर्टफोलियों को धन के वितरण के समस्या के रूप में मुद्रा की माँग का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है परिसम्पत्ति के जोखिम और अनुमानित प्रतिफल पर। आर्थिक उपज, प्रतिपादन तरलता और सुरक्षा के अलावा लेन-देन को आसान बनाने के रूप में ऐसी सेवाओं में शामिल है। ये प्रारूप ब्याज दरों और वास्तविक मुद्रा के माँग के बीच के संबंध को प्रदर्शित करने के लिए विकसित किया गया है। वे मुद्रा और मुद्रा की माँग की निर्धारण करने में महत्वपूर्ण कारक के रूप में तरलता के महत्व को दर्शाते है।

केन्ज के मूल तरलता वरीयता अनुसूची के वैकल्पिक व्याख्या के रूप में भविष्य में ब्याज दरों में अन्तर को प्रदर्शित करता है, टोबिन ने बताया कि व्यक्तियों के जोखिम से बचने के व्यवहार का सिद्धान्त तरलता वरीयता

और मुद्रा के माँग तथा ब्याज के बीच एक ऋणात्मक संबंध को प्रदर्शित करता है। दरअसल यह सिद्धान्त जोखिम से बचने के पोर्टफोलियों प्रबंध के सरल सिद्धान्त पर आधारित है। इस ढ़ाँचे में विभिन्न परिसम्पत्तियों का जोखिम/लाभ व्यक्ति के स्वभाव द्वारा निर्धारित इष्टतम पोर्टफोलियों संरचना है जो उपयोगिता के अनुरूप उपलब्ध अवसरों को स्वीकार करने से प्राप्त भी है।

टोबिन (1958) का मानना है कि एक निवेशकर्त्ता के समक्ष यह समस्या होती है कि वह अपने वित्तीय परिसम्पत्तियों के पोर्टफोलियों में कितना अनुपात मुद्रा के रूप में तथा कितना ब्याज वाले ऋणपत्रों के रूप में रखें। व्यक्तियों के पोर्टफोलियों में शेयर जैसे अधिक जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियाँ भी हो सकती है। इस संबंध में टोबिन ने तर्क दिया कि एक व्यक्ति का विवेकपूर्ण व्यवहार यह होता है कि वे अपनी परिसम्पत्तायों का वह पोर्टफोलियों रखें जिसमें ऋणपत्र तथा मुद्रा दोनों का ही एक संतुलित संयोग हो। यदि परिसम्पत्ति धारक अपनी पोर्टफोलियों में ऋणपत्रों जैसी जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियों को अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में रखता है तो उसे अधिक औसत प्रतिफल भी प्राप्त होगा किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक जोखिम भी सहन करेगा। टोबिन का विचार है कि एक जोखिम से दूर रहने वाला व्यक्ति उस पोर्टफोलियों का चुनाव नहीं करेगा जिसमें सभी जोखिमपूर्ण ऋणपत्र हो या उसका अधिक अनुपात हो।

9.7 टोबिन का तरलता अधिमान फलन

टोबिन ने ब्याज दर तथा मुद्रा के माँग के बीच संबंध को प्रदर्शित करने वाला अपना तरलता अधिमान फलन व्युत्पन्न किया। उनका तर्क है कि ब्याज दर (ऋणपत्रों पर प्रतिफल की दर) में वृद्धि होने पर सामान्यता सम्पत्ति धारक अपनी सम्पत्ति को अपेक्षाकृत अधिक अंश ऋणपत्रों के रूप में रखने के लिए आकर्षित होंगे तथा अपने सम्पत्ति को मुद्रा के रूप में संचय में कमी करेंगे। इसके विपरीत अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर वे अपने पोर्टफोलियों में अधिक मुद्रा तथा कम ऋणपत्र रखेंगे। इसका अभिप्राय यह कि केन्ज के सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के समान टोबिन पोर्टफोलियों दृष्टिकोण के अन्तर्गत परिसम्पत्ति के रूप में मुद्रा का माँग फलन (अर्थात् तरलता अधिमान फलन) नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जैसाकि रेखाचित्र 3 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

फिशर (1975) ने यह तर्क दिया कि आर्थिक व्यक्ति का जोखिम से बचने के व्यवहार का अकेले मुद्रा का संचय कोई आधार प्रदान नहीं करती क्योंकि टोबिन के अनुसार मुद्रा पूरी तरह से जोखिम मुक्त नहीं होती। एक अन्य प्रारूप अन्रत्व्यापी पीढ़ी माडल भी मुद्रा के भण्डार मूल्य फलन के महत्व को दर्शाता है। थामस साजेन्ट एवं नील वालेरस के द्वारा 1980 में इस प्रारूप को ख्याति मिली जिसको सेम्युलसन के द्वारा आरम्भ किया गया था। अतिव्यापी पीढ़ी माडल एक संतुलित गतिशील माडल है जो भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के बचत के महत्व को बताती है।

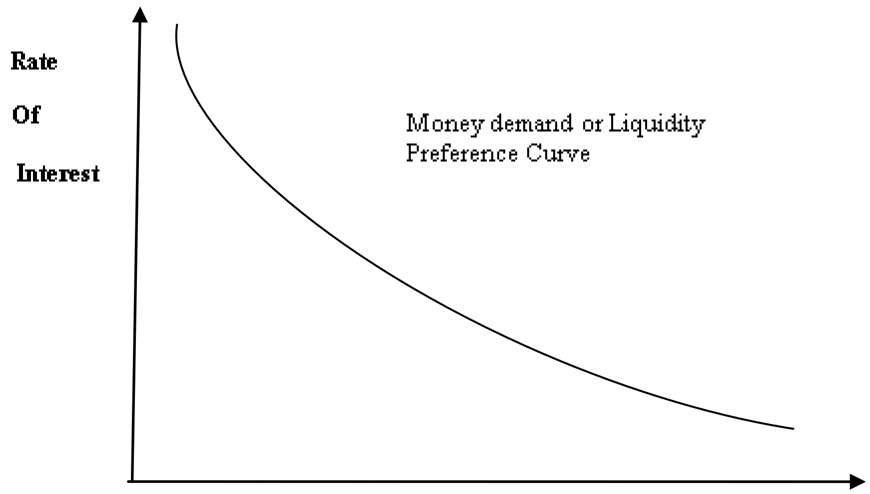

Asset demand for money

रेखाचित्र 3

मुद्रा के वर्तमान लेन-देन को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हुए मुद्रा को विनिमय फलन के साथ विशुद्ध रूप से एक परिसम्पत्ति माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के समय से ही कुछ निश्चित वस्तुओं का उपभोग करता है जो कि कम रिकार्ड होते है और अगली समयावधि में उपभोग के लिए उपलब्ध नहीं होते है। अर्थात् इन्हें पुनः उपभोग के लिए संग्रहित नहीं किया जा सकता है। यद्यपि Enclowment का विनिमय मुद्रा के साथ किया जा सकता है जिसे किसी समय अवधि में संग्रहित किया जा सकता है। किसी भी अवधि में युवा अपने उपभोग की वस्तुओं का विनिमय पुरानी पीढ़ी से करते है जो पुरानी-पीढ़ी को उस अवधि में उपभोग को सुविधाजनक बनाती है।

इस प्रकार ऐसा लगता है कि इन सभी प्रारूप में मुद्रा ही विनिमय का माध्यम है लेकिन इसके भण्डारण मूल्य की क्षमता सम्भावित उपभोग के बदलाव की सुविधा देती है। इस प्रकार से प्रारूप हमें यह बताने का प्रयत्न करते है कि मुद्रा की माँग परिसम्पत्ति के रूप में मानते है न कि विनिमय के रूप में। इन प्रारूपों की मुख्य आलोचना इस आधार पर किया गया है कि ये इस बात को स्पष्ट करने में असफल होते है कि परिसम्पत्ति यों के दूसरे रूप की अपेक्षा मुद्रा के रूप में क्यों रखा जाता है जबकि वहाँ पर कम जोखिम और धनात्मक ब्याज भी मिलता है।

9.8 उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण

मुद्रा का विश्लेषण फ्रीडमैंन के उपभोक्ता के माँग सिद्धान्त के अन्तर्गत किया गया है। जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का संग्रहण इसलिए करता है कि उस वस्तु का उपभोग कर सकें। यह सिद्धान्त शिकागो स्कूल से संबंधित है। जिसमें मुद्रा की माँग को किसी टिकाऊ सामान के माँग की परम्परिक सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विस्तार बताया गया है। फ्रीडमैन 1956 ने मुद्रा को परिसम्पत्ति यों के एक ऐसे प्रकार के रूप में मानते है जिसमें सम्पत्ति संचय करने वाले अपनी सम्पत्ति के एक भाग को तरल रख सकता है। फ्रीडमैन के अनुसार *''व्यक्ति मुद्रा का संचय उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए करते है।''* यह ध्यान रहे कि मुद्रा द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से अभिप्राय सामान्य क्रय-शक्ति से होता है। मुद्रा की माँग से संबंधित उनका दृष्टिकोण न तो मुद्रा संचय के किसी उद्देश्य पर विचार करता है और न ही यह सट्टा तथा क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के बीच कोई अन्तर करता है। फ्रीडमैन मुद्रा की माँग को केवल पूँजीगत परिसम्पत्ति यों की माँग के सामान्य सिद्धान्त के प्रयोग के रूप में ही मानते है।

फ्रीडमैन का मुद्रा नकद माँग फलन (M^d) को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$M^d = f\ (W, h, r_m, r_b, r_c, P, \Delta P / P.\ U)$$

चूँकि वास्तविक मुद्रा शेषों की माँग की नकद माँग को कीमत स्तर द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त किया जाता है अतः वास्तविक मुद्रा शेष को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है-

$$M^d = f\ (W, h, r_m, r_b, r_c, \Delta P / p.\ U)$$

जहाँ M^d मुद्रा की नकद माँग, M^d /p वास्तविक मुद्रा शेष की माँग, w व्यक्तियों की सम्पत्ति , h व्यक्तियों द्वारा संचित मानवीय सम्पत्ति तथा कुल सम्पत्ति का अनुपात, r_m ब्याज की दर, r_b ऋणपत्रों पर ब्याज की दर, r_c शेयरों पर प्रतिफल की दर, P कीमत स्तर, $\Delta P / p$ कीमत स्तर में परिवर्तन तथा U संस्थागत तत्वों को प्रदर्शित करते है।

यह विशेष महत्वपूर्ण है कि मुद्रा की माँग को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्व व्यक्तियों की सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति के अन्तर्गत फ्रीडमैन ने ऋणपत्र शेयर या मुद्रा जैसी गैर-मानवीय सम्पत्ति ही नहीं सम्मिलित करते जिनसे प्रतिफल की विभिन्न दरें प्राप्त होती है बल्कि मानवीय पूँजी को भी सम्मिलित करते है।

कीन्स के सिद्धान्त के विपरीत फ्रीडमैन ने यह माना कि लोग कैम्ब्रीज स्कूल के परिमाणात्मक सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा का संग्रह करते है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी विश्लेषण किया कि किसी व्यक्ति विशेष के विभिन्न परिस्थितियों में कितनी मुद्रा की आवश्यकता होती है। एक छोटा सा अन्तर फ्रीडमैन सिद्धान्त और उसके पूर्व के सिद्धान्तों में यह है कि फ्रीडमैन का विश्लेषण बृहद-मुद्रा पर आधारित है जबकि पहले के सिद्धान्त नैरो मनी पर आधारित है। फ्रीडमैन ने कीन्जोपरान्त मुद्रा के माँग के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जहाँ मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्ति का एक हिस्सा माना जाता है। फ्रीडमैन ने बताया कि इन वास्तविक वस्तुओं को भी पोर्टफोलियों में शामिल करना चाहिए क्योंकि ये कई प्रकार की सेवाओं को उत्पन्न करते है। फ्रीडमैन का मत है कि *''परिवर्तनशील अवसर लागत और अनुमानित मुद्रा स्फीति की दर का मुद्रा माँग फलन में सैद्धान्तिक महत्व होता है।''*

वर्तमान में उपभोक्ता का माँग सिद्धान्त मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में मुख्य भूमिका अदा कर रहा है। विचार यह है कि मौद्रिक समूह जैसे M_1, M_2, M_3 और L के गणना में समान भारांको का उपयोग किया जाए।

9.9 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पी प्रश्न

1. निम्न अर्थशास्त्रियों में कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री कौन है?

    (क) मार्शल (ख) जॉन राबिन्सन

    (ग) पीगू (घ) विकसेल

2. भण्डार का सिद्धान्त किसने दिया है?

    (क) मार्शल (ख) टोबिन

    (ग) बामोल (घ) कीन्स

9.10 सारांश

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र असाम्य, गैर-बाजार क्लीयरिंग विश्लेषण और समयोपरि परिवर्तन से संबंधित है। वृद्धि एवं प्रावैगिकी इसके केन्द्रीय अंग है। इसलिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विस्तार पथ की अस्थिर प्रकृति की विवेचना, विश्लेषण का प्रमुख केन्द्र बन जाता है। कीन्सोत्तर आर्थिक विश्लेषण में बेरोजगारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है

क्योंकि यह आर्थिक संकट से जुड़ा हुआ मुद्दा है। प्रभावपूर्ण माँग विशेष रूप से निवेश माँग को अर्थव्यवस्था की कारक शक्ति के रूप में देखा जाता है। जिसमें पूँजी संचय प्रत्याशा और वितरणात्मक प्रभावों के साथ में, वृद्धि एवं व्यापार चक्र सिद्धान्तों की धुरी होती हैं। निवेश वितरण और कीमत निर्धारण जो प्रतिस्पर्धा से संबद्ध है से गहराई से जुड़ा हुआ है। मुद्रा एवं वित्त विश्लेषण के आरम्भ से ही वास्तविक अर्थव्यवस्था सं संबद्ध होते हैं।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का एक महत्वूपर्ण निष्कर्ष यह है कि एक दिये गये निवेश के स्तर पर अर्थव्यवस्था वहाँ संतुलन में होती है जहाँ बचत निवेश के बराबर होती है, एवं पूँजीपतियों की बचत प्रवृत्ति कम होती हैं एवं राष्ट्रीय आय में उनका हिस्सा अधिक होने के कारण मजदूरों का हिस्सा कम होगा। यह स्पष्ट कथन महत्वूपर्ण है कि क्योंकि यह नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के दावें का खण्डन करता है कि पूँजीपति इसलिए ऊँचे आय स्तर का आनन्द लेता है क्योंकि वह बचत करने के लिए कष्ट उठाता है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों का यह परिणाम इस धारणा पर आधारित है कि बचत आय स्तर में होने वाले पविर्तनों से निष्क्रिय रूप से संबद्ध है और निवेश पूँजीपतियों के भविष्य में प्रत्याशाओं से गहनता से संबद्ध है। यदि हम आशावादी है तो निवेश बढ़ेगा, वृद्धि होगी और पूँजीपतियों का राष्ट्रीय में हिस्सा भी बढ़ेगा और आय के बढ़ने पर पूँजीपति बचत को बढ़ाकर नये कीन्सीय संतुलन के स्तर पर लायेगा जहाँ बचतें निवेश के बराबर होगी।

9.11 शब्दावली

- **माँग फलन:** किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी उपभोक्ताओं द्वारा माँगी जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध व्यक्त करने वाला फलन माँग फलन कहलाता है।
- **पूर्ति फलन:** किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उत्पादको द्वारा उस वस्तु की पूर्ति की जाने वाली मात्राओं का गणितीय सम्बन्ध पूर्ति फलन कहलाता है।
- **माँग का नियम:** अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु या सेवा की कीमत मे वृद्धि होने पर उसकी माँग घटती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी माँग बढ़ती है। अर्थात किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी जाने वाली मात्रा मे विपरीत सम्बन्ध होता है।
- **माँग :** एक दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की माँग, उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस कीमत पर एक निश्चित समय मे क्रेताओं द्वारा खरीदी जाऐगी।
- **पूर्ति:** किसी वस्तु की पूर्ति वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय में तथा एक निश्चित कीमत पर बाजार मे बेचने को तैयार है।

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पी प्रश्न

1. (ख), 2. (ग)

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Rousseas, Stephen (1986), *Post Keynesian Monetary Economics*, Macmillan, London.
- Eichner, Alfred (1985), *Toward a new economics: Essays in post Keynesian and Institutionalist theory*, Macmillan, Houndmills.
- Davidson, Paul (1972), *Money and the real world*, Macmillan, London.

- Kaldor, N. (1982), *The Scourge of Monetarism*, Oxford, UK.
- Weintraub, Sidney (1978), *Keynes, Keynesian and Monetarists*, Philadelphia; University of Philadelphia press.
- Philip Arestis (1992), *Post-Keynesian Approach to Economics,* Edward Elgar.
- Sheila, C. Dow (1987), Post-Keynesian Monetary theory for an open economy, *Journal of Post Keynesian Economics*, Vol. IX, No. 2.
- Allin, Cottrell (1994), post Keynesian Monetary economics: A critical Survey, *Cambridge Journal of Economics*, Vol. 18, pp. 587-605.
- Subrananian, S. Sriram (1999), Survey of Literature on Demand for money: Theoretical and empirical work with special reference to error-correction models IMF working paper.
- Laidler, D.E.W. (1993), *The Demand for Money: Theories Evidence and Problems,* (New York: Harperwollins).
- Friedman, M. (ed) (1956), *Studies in the Quantity Theory of Money*, University of Chicago Press.

9.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.
- Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Laxmi Narain Agarwal, Agra.
- सेठी, टी.टी. समष्टि (2010): समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बामोल के भण्डार सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 10 : IS-LM वक्र प्रारूप
(UNIT 10 : IS-LM CURVE MODEL)

10.1 प्रस्तावना
10.2. उद्देश्य
10.3 IS-LM प्रारूप वक्र
10.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
10.5 ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, (नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त)
10.6 ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त (केन्स का सिद्धान्त)
10.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त IS-LM प्रारूप वक्र (नव-केन्सियन सिद्धान्त)
10.8 अभ्यास प्रश्न
10.9 सारांश
10.10 शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.14 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

कीन्स का मुद्रा माँग एवं ब्याज दर का सिद्धान्त एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रस्तुत इकाई में ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त IS-LM प्रारूप वक्र से किस प्रकार निर्धारण होता है कि व्याख्या, आलोचनाएं आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आ ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त, IS-LM के सिद्धांत को समझ सकेंगें तथा इसका समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

10.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगें कि ब्याज दर के कौन-कौन से सिद्धान्त हैं।
- ✓ बता सकेंगें कि ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त क्या हैं।
- ✓ समझा सकेंगें कि आर्थिक विश्लेषण में कीन्स के ब्याज सिद्धान्त का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण हैं।
- ✓ बता सकेंगें कि ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त IS-LM प्रारूप वक्र से किस प्रकार निर्धारण होता हैं।

10.3 IS-LM प्रारूप वक्र

IS-LM प्रारूप् वक्र ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त है। हिक्स, लर्नर तथा हेन्सन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने केन्स के ब्याज सिद्धान्त तथा ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण अंशो को मिलाकर एक नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसलिए यह जरूरी ह¨ जाता है कि ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त का अध्ययन करने से पहल्¨ हम ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त, (2) ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त, तथा (3) केन्स का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त का अध्ययन कर लें। इन तीनों सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद ही ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त को समझ पायेंगे।

10.4 ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. मार्शल ने किया है। इसलिए इसे *'मार्शल का ब्याज सिद्धान्त'* भी कहा जाता है। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अर्थशास्त्रियों मार्शल पीगू, कैसल्स, वालरस, टॉसिंग तथा नाईट ने ब्याज के निर्धारण में उत्पादकता तथा मितव्ययता जैसे वास्तविक तत्वों को महत्वपूर्ण माना न कि मौद्रिक तत्वों को। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त भी कहते हैं। इस सिद्धान्त को समय अधिमान उत्पादकता सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज बचत करने, प्रतीक्षा करने अथवा वर्तमान उपभोग को भविष्य के लिए टालने का प्रतिफल है।

ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। इस सिद्धान्त में आय स्तर को स्थिर मान लिया गया है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण पूँजी की माँग व पूर्ति के द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में ब्याज दर का निर्धारण निवेश माँग अनुसूची तथा बचत अनुसूची के प्रतिच्छेदन बिन्दु या बचत और निवेश के समानता पर होता है। ब्याज सिद्धान्त के अन्तर्गत बचत एक महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि इस सिद्धान्त में बचत का अर्थ मुद्रा से नहीं है और न ही मुद्रा के संचय से है। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत का उपभोग नहीं किया जाता है बल्कि बचत का किसी अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में या संक्षेप में कह सकते हैं बचत का पूँजी में निवेश कर दिया जाता है। इसलिए इस सिद्धान्त को बचत-निवेश सिद्धान्त भी कहा जाता है।

ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर पूँजी की माँग (अर्थात निवेश की माँग) उसकी कुल पूर्ति (अर्थात् बचतों की पूर्ति) के बराबर होती है। इस बिन्दु पर माँग एवं पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं। इसलिए इस सिद्धान्त को माँग-पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं। रेखाचित्र 10.1 में पूँजी की माँग (II) तथा पूर्ति (SS) वक्र रेखाएँ E बिन्दु पर एक दूसरे को काटती है। बिन्दु E पर माँग और पूर्ति में संतुलन है और ब्याज की दर ORi है जो संतुलित ब्याज दर है। ब्याज के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों इस संतुलित ब्याज दर को ब्याज का प्राकृतिक दर भी कहते हैं। रेखाचित्र 10.1 में OX अक्ष पर पूँजी की माँग व पूर्ति को दिखाया गया है। जबकि OY अक्ष पर ब्याज की दर को दिखाया गया है। बिन्दु E संतुलित ब्याज दर है जहाँ पूँजी की माँग (I) पूँजी की पूर्ति (S) के बराबर है। रेखाचित्र 10.1 में (I) निवेश तथा (S) बचत को प्रदर्शित करते हैं।

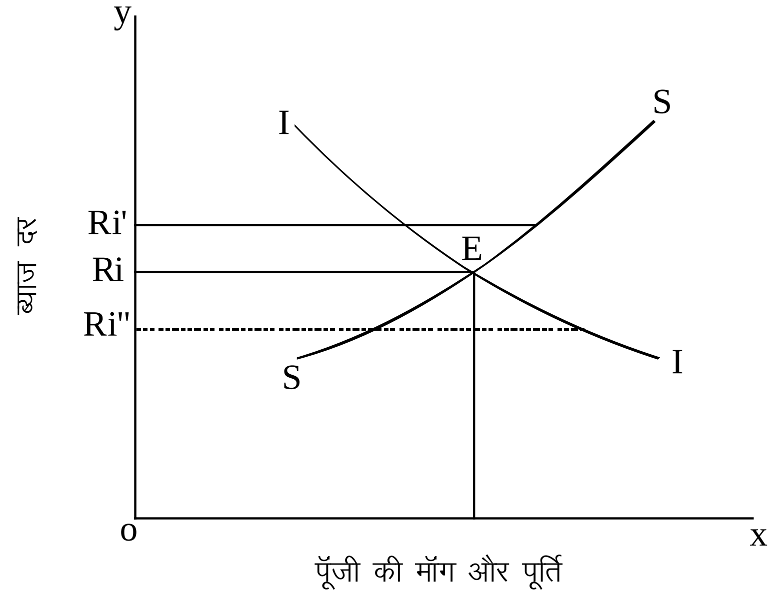

रेखाचित्र 10.1 - ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

ध्यान देने योग्य बातें- ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त में दो तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण हैं-

(1) पूँजी की माँग एवं

(2) पूँजी की पूर्ति।

सबसे पहला प्रश्न उठता है कि हम पूँजी की माँग क्यों करते हैं? पूँजी की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि पूँजी पदार्थों में उत्पादकता गुण होता है। इस उत्पादकता में निवेश करने हेतु पूँजी की माँग की जाती है। इसलिए पूँजी अथवा बचतों की माँग को निवेश की माँग भी कहा जाता है। यही कारण है कि रेखाचित्र में पूँजी की माँग को I (निवेश) से दर्शाया गया है। दूसरा प्रश्न उठता है कि पूँजी की माँग एवं ब्याज दर में क्या संबंध है। ह्रासमान प्रतिफल नियम के अन्तर्गत पूँजी की अधिक इकाईयों के प्रयोग से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिरती जाती है। इसलिए एक उत्पादक पूँजी का उपयोग उस बिन्दु तक करेगा जहाँ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर के बराबर होती है। पूँजी की माँग में कमी तथा वृद्धि के द्वारा उत्पादक पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को ब्याज दर के साथ समायोजित करता है। यदि ब्याज की बाजार दर ऊँची है तो पूँजी की माँग में कमी होती है और ब्याज दर कम होने पर पूँजी की माँग में वृद्धि होती है। पूँजी की माँग (निवेश) तथा ब्याज-दर में विपरीत सम्बन्ध होने के कारण पूँजी का माँग (II) वक्र बायें से दायीं ओर नीचे गिरता हुआ होता है। रेखाचित्र 10.1 में (II) वक्र इसी प्रकार का है।

पूँजी की पूर्ति से तात्पर्य पूँजी की माँग को पूरा करने से है। पूँजी की माँग अर्थात निवेश की माँग की पूर्ति जो बचत अनुसूची पर निर्भर करती है। ये वही बचत है जो पूँजी की उत्पादकता में निवेश कर दिये जाते हैं। बचतें त्याग या प्रतिक्षा का परिणाम होती है। लोगों के त्याग तथा प्रतिक्षा का पुरस्कार ब्याज के रूप में दिया जाता है। साधारणतया ब्याज दर ऊँची होने पर बचत भी अधिक होती है और ब्याज दर में कमी आने पर बचत में भी कमी आ जाती है। ब्याज दर और बचत (SS) में सीधा सम्बन्ध होने के कारण पूँजी का पूर्ति (SS) वक्र बायें से दायीं ओर ऊपर उठता हुआ होता है, जिसे रेखाचित्र 10.1 में (SS) के द्वारा दिखाया गया है।

ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना

इस सिद्धान्त में अनेक त्रुटियाँ है जिसके कारण इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है। मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित है-

(1) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

(2) इस सिद्धान्त में आय-स्तर को स्थिर मान लिया गया है।

(3) यह सिद्धान्त मौद्रिक तत्वों की अवहेलना करता है। इस सिद्धान्त में मुद्रा को केवल ‘विनिमय-माध्यम’ माना गया है, जबकि यह ‘मूल्य संचक’ भी है। जो भी आय उपभोग पर व्यय नहीं की जाती है, उसका निवेश करना आवश्यक नहीं है। उसका नकद-मुद्रा के रुप में संचय भी किया जा सकता है।

(4) पूँजी की पूर्ति में मात्रा बचत ही नहीं बल्कि बैंक मुद्रा, पिछली बचत आदि भी पूँजी की पूर्ति में शामिल हो सकते हैं।

(5) इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण बचत और निवेश के संतुलन बिन्दु पर होता है। परन्तु बचत और निवेश स्वयं ब्याज दर पर निर्भर होते हैं।

10.5 ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त

ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण केवल पूँजी अथवा बचत (निवेश) की माँग और पूर्ति पर निर्भर नहीं करता बल्कि समस्त ऋणयोग्य कोष की माँग व पूर्ति पर निर्भर करता है। ऋणयोग्य कोष से अभिप्राय उन मुद्रा राशियों से है जिनकी किसी समय में मुद्रा बाजा में पूर्ति तथा माँग की जाती है। ब्याज दर का निर्धारण ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अन्तर्गत समस्त ऋणयोग्य कोष की माँग एवं ऋणयोग्य कोष की प्रतिच्छेदन बिन्दु पर होता है। ऋणयोग्य कोष की माँग निवेश और संचय के लिए की जाती है। यदि निवेश की राशि में विनिवेश तथा संचय की राशि में से विसंचय को निकाल दिया जाय तो शुद्ध निवेश तथा शुद्ध संचय क्रमशः की राशियॉं ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार ऋणयोग्य कोष की माँग में दो तत्व शामिल है- (1) शुद्ध निवेश तथा (2) शुद्ध संचय। ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में बचत तथा बैंक साख में विस्तार के कारण मुद्रा-पूर्ति सम्मिलित होती है। इसके अतिरिक्त पिछली बचतों का विसंचय तथा विनिवेश भी ऋणयोग्य कोष की पूर्ति को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में दो तत्व सम्मिलित है- बचत (S) तथा बैंक मुद्रा अथवा नई मुद्रा (M)। यह सिद्धान्त समस्या से सम्बन्धित मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक पहलुओं पर ध्यान देता है।

ध्यान दें- ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज दर को केवल बचत और निवेश का फलन माना गया है। यदि ब्याज दर को r के द्वारा, निवेश को I के द्वारा, S को बचत के द्वारा, M को बैंक मुद्रा अथवा नयी मुद्रा तथा H को शुद्ध संचय के द्वारा व्यक्त किया जाय, तो प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार,

$$r = f(I, S)$$

इसके विपरीत ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त ब्याज दर को चार तत्वों को फलन मानता है-

$$r = f(I, S, M, H)$$

ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्रियों नट विकसेल द्वारा किया गया था आगे चलकर अन्य स्वीडिश अर्थशास्त्रियों बर्टिल ओलिन, एरिक लिन्दाल तथा गुन्नार मिर्डल ने इस सिद्धान्त में सुधार लाया। इंग्लैंण्ड में इस सिद्धान्त के प्रतिपादक सर डेविस रॉबर्टसन को माना जाता है। इस सिद्धान्त को नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त भी कहते हैं। क्योंकि ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अन्तर्गत वस्तु एवं सेवाओं के साथ-साथ बैंक मुद्रा, विसंचय एवं विनिवेश भी सम्मिलित होता है। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक एवं मौद्रिक सिद्धान्त भी कहते हैं।

ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय विकसेल का मानना था कि बैंक साख की मात्रा से ब्याज दर में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे शब्दों में विकसेल ने साख-मुद्रा की पूर्ति को ब्याज निरपेक्ष बताया है क्योंकि उनके विचारोनुसार बैंक साख की मात्रा बैंकों के नकद कोषों की स्थिति पर निर्भर करती है। इस प्रकार, ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में M को स्थिर मान लिया गया जिसे रेखाचित्र 10.2 में MM से दिखाया गया है। OX अक्ष पर ऋणयोग्य-कोष एवं OY अक्ष पर ब्याज दर को दिखाया गया है। माँग पक्ष में केवल निवेश के लिए माँग पर विचार किया गया और संचय के उद्देश्य से की जाने वाली माँग (H) की ओर ध्यान नहीं दिया गया। बाद में अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा सिद्धान्त में सुधार किये गये जिनके परिणामस्वरूप M को ब्याज सापेक्ष यानि परिवर्तनशील मान लिया गया जिसे M_1M_1 से दिखाया गया है। SS बैंक मुद्रा है जो ब्याज सापेक्ष है अर्थात् ब्याज दर में होने वाली परिवर्तनों से प्रभावित होती है। SS वक्र ब्याज की विभिन्न दरों पर उपलब्ध होने वाली बचत की राशियों को व्यक्त करता है। SS वक्र बायें से दायीं ओर ऊपर को जा रही है। यह वक्र ब्याज दर और बचत में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बताता है अर्थात् ब्याज दर में वृद्धि होने पर बचत में भी वृद्धि ह`गी तथा ब्याज दर में कमी आने पर बचत में भी कमी आयेगी। M_1M_1 और SS पूर्ति पक्ष को दर्शा रहे हैं। इसी तरह माँग पक्ष में भी दो वक्र निवेश (I) और संचय (H) को II और HH से दर्शाया गया है। II वक्र बायें से दायीं ओर नीचे की तरफ गिर रहा है अर्थात निवेश की मात्रा का ब्याज दर से विपरित सम्बन्ध है। ब्याज दर ऊँची होने पर निवेश की माँग नीची होती है और ब्याज दर में कमी आने पर निवेश की माँग में वृद्धि होती है। माँग पक्ष का दूसरा तत्व संचय है जिसे HH से दिखाया गया है। वक्र HH ब्याज की विभिन्न दरों पर संचय की माँग को व्यक्त करता है। यह भी नीचे की ओर गिरता हुआ है जिससे पता चलता है कि ब्याज दर ऊँची होने पर नकद कोषों के संचय की माँग कम होती है। I+H वक्र कुल माँग को व्यक्त करता है तथा $S+M_1$ वक्र कुल पूर्ति को व्यक्त करता है। I+H वक्र II और HH वक्र को जोड़कर प्राप्त किया गया है तथा $S+ M_1$ वक्र SS और M_1M_1 वक्र को जोड़कर प्राप्त किया गया है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण बिन्दु E पर है जहाँ वक्र II और SS एक दूसरे को काटते हैं। बिन्दु E पर ब्याज दर OR है। बिन्दु E को ब्याज दर का वास्तविक सिद्धान्त कहते हैं इसे ब्याज का प्राकृतिक दर सिद्धान्त भी कहते हैं। बिन्दु E पर निवेश एवं बचत की मात्रा समान है। ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के अनुसार ऋणयोग्य कोष का माँग वक्र (I + H) ऋणयोग्य कोष की पूर्ति वक्र ($S + M_1$) को बिन्दु E_1 पर काटता है। इस बिन्दु पर ब्याज की बाजार दर OR_1 के बराबर है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण पर होता है।

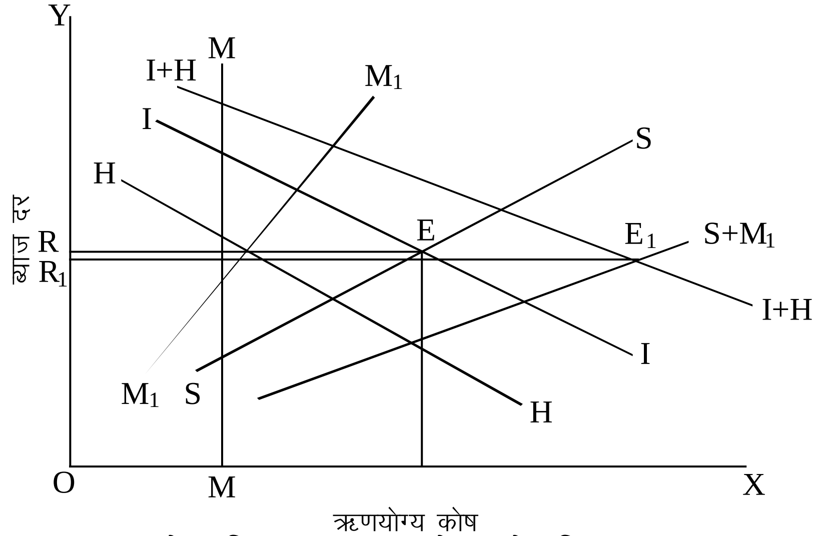

रेखाचित्र 10.2 - ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त

ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त की आलोचना

ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ वही है जो ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की है। ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तरह ही यह सिद्धान्त भी यह नहीं बताता है कि ब्याज दर कैसे निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में यह सिद्धान्त अनिर्धारणीय है। ऋणयोग्य/उधार देय कोषों की पूर्ति बचत, बैंक साख तथा असंचयन पर निर्भर करती है। पर बचत की मात्रा आय पर निर्भर करती है, बचत का ज्ञान बिना ब्याज दर के ज्ञान के नहीं किया जा सकता क्योंकि ब्याज दर विनियोग तथा आय को प्रभावित करता है। इस प्रकार, ब्याज दर की जानकारी के लिए आय-स्तर की जानकारी आवश्यक है और आय स्तर तभी जाना जा सकता है जब ब्याज दर की जानकारी हो। इस प्रकार ऋण योग्य कोष सिद्धान्त हमें वृत्ताकार तर्क में फँसा देता है।

10.6 ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक जेनरल थियरी आफ इम्पलायमेंट इन्टरेस्ट एण्ड मनी, 1936 (General Theory of Employment Interest and Money1936) ब्याज दर के निर्धारण का एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे उन्होंने तरलता अधिमान सिद्धान्त कहा। तरलता अधिमान सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण तरल रूप में मुद्रा अर्थात नकदी की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। **कीन्स** के शब्दों में *'ब्याज वह प्रतिफल है जो एक निश्चित समय के तरलता के परित्याग के लिए होता है।'* यही कारण है कि कीन्स के इस सिद्धान्त को तरलता अधिमान सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है पर उनके अनुसार यह बचत के रूप में पूर्ति तथा विनियोग के रूप में माँग के द्वारा निर्धारित नहीं होता (जैसा क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने माना) बल्कि यह मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। कीन्स का मुद्रा-पूर्ति से अभिप्राय किसी समय विशेष में चलन में विद्यमान मुद्रा की कुल मात्रा से है जो कोई व्यक्ति नकद मुद्रा के रुप में (तरल रुप) में या निष्क्रिय मुद्रा कोष के रूप में (क्योंकि इस पर कोई ब्याज या आय नहीं प्राप्त होती) अपने पास रखने की माँग करता है। कीन्सियन सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति बाह्यरुप से निर्धारित होती है। मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण मुद्रा अधिकारी की नीति तथा निर्णय के अनुसार होता है परन्तु मुद्रा की माँग तरलता पसंदगी अधिमान की माँग है। तरलता अधिमान का सरल शब्दों में अर्थ है नकदी की माँग। यह वह नकद राशि है जिसे लोग अपने पास तरल रूप में रखना चाहते हैं। कीन्स ने ऐसे तीन उद्देश्यों की चर्चा की जिनके लिए मुद्रा तरल रूप में रखी जाती है। ये तीन उद्देश्य हैं- (1) लेन-देन या व्यापारिक उद्देश्य, (2) सतर्कता, पूर्वोपाय प्रेरक या दूरदर्शिता उद्देश्य, तथा (3) पूर्वकलल्पी प्रेरक या सट्टा उद्देश्य।

ध्यान देने योग्य बातें- प्रथम दो उद्देश्यों के लिए मुद्रा की माँग आय सापेक्ष होती है, अर्थात् आय स्तर के परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होती है। परन्तु सट्टा उद्देश्य से की गयी तरलता अथवा नकदी की माँग ब्याज सापेक्ष होती है।
सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की माँग मुख्यतया संचय की प्रवृत्ति को व्यक्त करती है। कीन्स ने यह माना है कि आर्थिक इकाईयाँ जैसे व्यक्ति तथा व्यापारिक इकाइयॉं अपनी संपत्ति के कुछ भाग को वित्तीय संपत्तियों में रखती है। उन्होंने यह भी माना है कि 'मुद्रा तथा बॉण्ड' दो ही वित्तीय सम्पत्तियाँ है जिनमें वह अपनी संपत्ति रखेगा क्योंकि अन्य दो उद्देश्य लेन-देन और सतर्कता उद्देश्य में रखे जाने वाली मुद्रा आय के स्तर पर निर्भर करती है। ब्याज दर में परिवर्तन का कोई प्रभाव इन पर नहीं पड़ता है। सट्टा उद्देश्य के लिए की गयी मुद्रा की माँग ब्याज दर से प्रभावित होती है। लोग अपने पास नकदी इसलिए रखना चाहते हैं कि भविष्य में बॉण्ड की कीमतों में होने वाले परिवर्तनों से लाभ उठा पायें। कीन्स के अनुसार बॉण्ड की कीमत और ब्याज दर में विपरीत संबंध होता है। अतः बॉण्ड की कीमत गिर जाने पर ब्याज दर ऊँची होती है और बॉण्ड की कीमत बढ़ने पर ब्याज दर में गिरावट आती है। यदि ब्याज दर ऊँची होने की संभावना होगी तो सट्टा उद्देश्य से नकदी की माँग बढ़ जायेगी। इसके विपरीत यदि भविष्य में ब्याज दर में कमी के अनुमान लगाये जाते हैं (अर्थात् बॉण्ड की कीमतों में बढ़ने की संभावना है) तो नकदी की माँग कम होगी और बॉण्ड में अधिक धन लगाया जायेगा। स्पष्ट है कि सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की माँग ब्याज की वर्तमान दर की अपेक्षा भविष्य में सम्भावित दर से अधिक प्रभावित होती है। इसके निर्धारण में मनोवैज्ञानिक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए कीन्स ने ब्याज दर को एक अत्यधिक मनोवैज्ञानिक विषय बताया है।

ब्याज दर तथा बॉण्ड का मूल्य

ब्याज दर तथा बॉण्ड के मूल्य में विपरीत सम्बन्ध होता है इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए भारत सरकार ने 2000 में एक बॉण्ड निर्गत किया जिसका निर्गत मूल्य 100 रुपया था तथा जिस पर अंकित ब्याज दर 4 प्रतिशत रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि इस बॉण्ड पर धारकों को 4 रुपया प्रतिवर्ष ब्याज दर प्राप्त होता रहेगा। अगर बाजार ब्याज दर गिरकर 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो जाती है तो बाजार ब्याज दर के गिरने से बॉण्ड की कीमत में वृद्धि होगी। फलस्वरूप बॉण्ड का मूल्य 200 रुपया हो जायेगा क्योंकि 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की बाजार ब्याज दर पर 200 रुपये मूल्य के बॉण्ड से 4 रुपये प्राप्त हो जायेंगे। किसी बॉण्ड का बाजार मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं-

$$\text{बॉण्ड की ब्याज कीमत} = \frac{\text{बॉण्ड का निर्गत मूल्य } x \text{ मूल ब्याज दर}}{\text{बाजार ब्याज दर}}$$

$$200 = \frac{100 \times 4}{2}$$

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 4 प्रतिशत ब्याज दर पर बॉण्ड की कीमत 100 रुपया था। जब बाजार ब्याज दर गिरकर 2 प्रतिशत हो गया तो बॉण्ड की कीमत में वृद्धि हो गयी जो 200 रुपया है।

ब्याज दर का निर्धारण

कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ति के द्वारा होगा अर्थात् मुद्रा बाजार संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब मुद्रा की पूर्ति (Ms) मुद्रा की माँग (Md) के बराबर होगी-
संतुलित ब्याज दर = Md = Ms
मुद्रा की पूर्ति- कीन्स ने यह माना है कि मुद्रा की पूर्ति (Ms) किसी समय पर मौद्रिक अधिकारियों द्वारा बाह्यरूप से निर्धारित होती है।
मुद्रा की माँग- इसके पूर्व हम लोगो ने यह देखा मुद्रा की माँग तीन उद्देश्यों से की जाती है- व्यापारिक उद्देश्य (Lt), पूर्वोपाय प्रेरक (Lp) तथा पूर्वकल्पी या सट्टा उद्देश्य (Ls)। इस प्रकार मुद्रा की कुल माँग (Lt + Lp + Ls) होगी।

इसमें से (Lt) तथा (Lt) दोनों ही आय के स्तर (Y) पर निर्भर करेंगे। यदि हम (Lt + Lp) को L_1 से व्यक्त करें तो हम कह सकते हैं कि (L_1 = f (Y)) कीन्स पूर्वकल्पी प्रेरक की माँग को अलग रखा। यदि हम पूर्वकल्पी माँग को L_2 से व्यक्त करें तो हम यह कह सकते हैं कि L_2 = f (r)) । इस प्रकार तरलता की कुल माँग (Md) = L_1+ L_2 या Md = L_1 = f (Y) + L_2 = f (r) रेखाचित्र 10.3 में एक दिये हुए मौद्रिक आय के स्तर पर Md मुद्रा की माँग रेखा है तथा Ms मुद्रा की पूर्ति रेखा है जो मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित की जाती है। OR ब्याज दर पर मुद्रा बाजार का संतुलन बिन्दु E पर है।

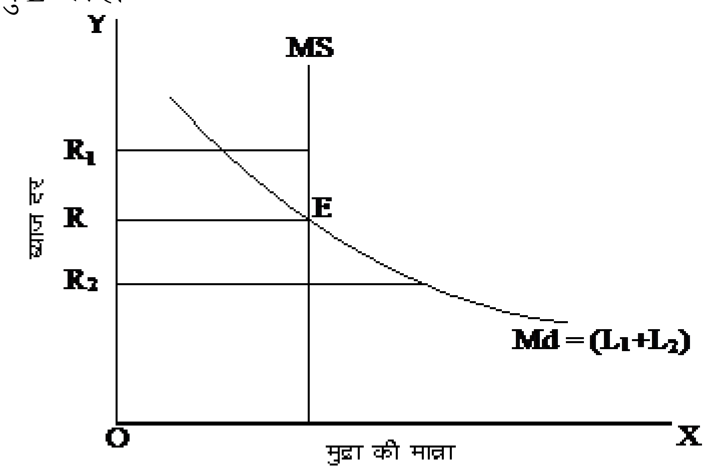

रेखाचित्र 10.3 – ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

मान लीजिए ब्याज दर बढ़कर OR_1 हो जाती है ऐसी स्थिति में मुद्रा की पूर्ति माँग से अधिक है। अब यदि दो ही सम्पत्ति मुद्रा तथा बॉण्ड हो जैसा कीन्स ने माना, तो मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति का उपयोग लोगों द्वारा बॉण्ड खरीदने के लिए किया जायेगा। बॉण्ड की माँग बढ़ने से तथा मुद्रा पूर्ति स्थिर रहने पर बॉण्ड की कीमत में वृद्धि होगी। बॉण्ड की कीमत तथा ब्याज दर में विलोम सम्बन्ध के कारण बॉण्ड की कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप ब्याज दर में कमी आयेगी। ब्याज दर गिरने के कारण मुद्रा की माँग और पूर्ति पुनः संतुलन बिन्दु E पर आ जायेगी।

दूसरी ओर यदि ब्याज दर OR से गिरकर OR_2 होने पर मुद्रा की माँग मुद्रा की पूर्ति से अधिक हो जायेगी। इस आधिक्य माँग को पूरा करने के लिए लोग बॉण्ड की बिक्री करेंगे। बॉण्ड की बिक्री से उनकी कीमत कम होगी जिसके प्रभाव से ब्याज दर में वृद्धि होगी। इससे ब्याज दर पुनः संतुलन बिन्दु OR पर स्थापित हो जायेगा।

निष्कर्ष-ब्याज की तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा बाजार संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब –

Md = Ms (Md = L_1 (y) + L_2 (r)

L_1 = Lt + Lp = लेन देन या व्यापारिक उद्देश्य

P = सतर्कता/पूर्वोपाय उद्देश्य

S = सट्टा उद्देश्य

L_2 = Ls

मुद्रा की माँग अथवा तरलता पसंदगी स्थिर रहने पर मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का प्रभाव- सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन खुले बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय-बिक्रय द्वारा किया जाता है। रेखाचित्र 10.4 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज दर को दिखाया गया है। MM मुद्रा की पूर्ति पर OR ब्याज दर है। यदि मुद्रा की पूर्ति बढ़कर M_2M_2 हो जाती है तो मुद्रा की पूर्ति वक्र M_2M_2 मुद्रा की माँग वक्र Lp को ब्याज दर OR_2 पर काटती है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज दर में गिरावट आती है। कीन्स ने यह प्रतिपादित किया कि जैसे-जैसे ब्याज दर गिरती जायेगी लोगो की निष्क्रिय नकद शेष की माँग बढ़ती जायेगी, मन्दड़िए बॉण्ड

से हटकर अपनी नकद मुद्रा की धारिता बढ़ायेंगे अर्थात् बॉण्ड बेचकर नकद शेष रखना अधिक चाहेंगे। एक ऐसी स्थिति आयेगी जब न्यूनतम ब्याज दर पर सभी लोग बॉण्ड बेचकर नकद (तरल) को पसंद करेंगे। ऐसी स्थिति में मुद्रा की माँग या तरलता अधिमान वक्र नीचे की ओर गिरता जायेगा। ब्याज दर गिरकर OR_2 पर आ जायेगा जहाँ पर बिन्दु E_2 के पश्चात् दाहिनी ओर क्षितिज रूप में समतल हो जायेगा। वक्र का यह पूर्णतया लोचदार भाग पूर्ण तरलता अधिमान की स्थिति को व्यक्त करता है। तरलता अधिमान वक्र चपटा तब होता है जब मुद्रा की ब्याज सपेक्षता अनन्त हो जाती है। तरलता अधिमान की इस पूर्ण अवस्था को तरलता जाल कहा जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि तरलता अधिमान की इस विशेषता के कारण ब्याज दर कभी शून्य नहीं हो सकती है। ब्याज दर के एक निम्न बिन्दु पर नकदी की माँग असीम हो जाती है जिससे ब्याज दर और नीचे नहीं गिर पाती है। ऐसी स्थिति में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि करने पर भी ब्याज दर में कमी नहीं होगी कीन्स के अनुसार यदि कोई अर्थव्यवस्था इस जाल में फँस जाय तो इससे बाहर लाने के लिए राजकोषीय नीति का सहारा लेना होगा, मौद्रिक नीति का नहीं।

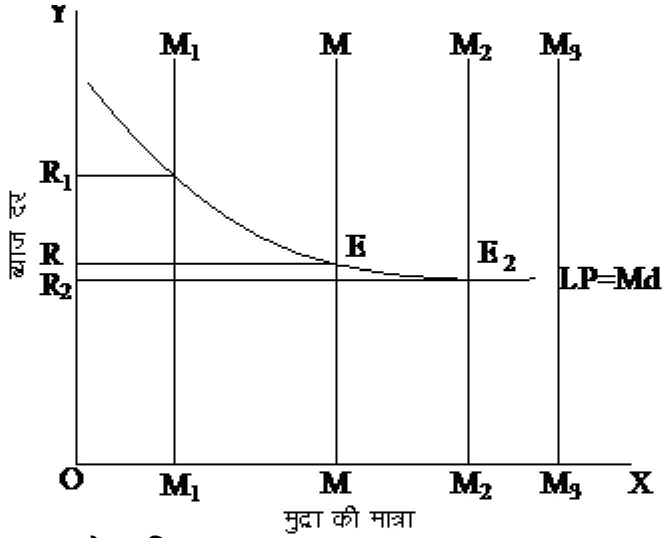

रेखाचित्र 10.4 – ब्याज का तरलता जाल

ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त की आलोचना

(1) क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की तरह ब्याज के तरलता सिद्धान्त में भी ब्याज अनिर्धारित है। कीन्स के ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धान्त में व्यापारिक लेन-देन एवं पूर्वोपाय उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली मुद्रा L_1 आय का फलन होती है। इस प्रकार L_1 को तब तक नहीं जाना जा सकता है जब तक कि आय का स्तर नहीं ज्ञात हो और आय का स्तर तब तक नहीं जाना जा सकता है जब तक कि ब्याज दर नहीं ज्ञात हो क्योंकि विनियोग ब्याज दर के ऊपर निर्भर करता है तथा आय विनियोग के ऊपर निर्भर करती है। इस प्रकार बिना ब्याज दर r के ज्ञान के बिना आय y नहीं जाना जा सकता, बिना y के ज्ञान के L_1 नहीं जाना जा सकता और बिना L_1 के ज्ञान के पूर्वकल्पी प्रेरक की माँग L_2 को नहीं जाना जा सकता और बिना L_2 के ज्ञान के ब्याज नहीं जाना जा सकता है।

(2) कीन्स का तरलता अधिमान सिद्धान्त एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि इसमें माँग पर अधिक बल दिया गया है। पूर्ति पक्ष को स्थिर मान लिया गया है।

(3) प्रो. हेजलिट ने आलोचना करते हुए यह कहा है कि कीन्स ब्याज को एक शुद्ध मौद्रिक घटना मानते हैं। उसके ऊपर उत्पादकता तथा समय अधिमान के पड़ने वाले प्रभाव को नहीं स्वीकार किया।

(4) कीन्स ने ब्याज दर निर्धारण को विनिय`ग कोष की माँग या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से स्वतंत्र रखा है। परन्तु यह अव्यावहारिक है क्योंकि व्यापारियों द्वारा रखे जाने वाले नकद शेष की मात्रा के ऊपर विनियोग के लिए उनकी पूँजी की माँग का अधिक प्रभाव पड़ता है। पूँजी की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता के कारण होती है इसलिए ब्याज दर का निर्धारण विनियोग कोष की माँग या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से स्वतंत्र नहीं किया जा सकता।

10.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

IS-LM प्रारूप वक्र हिक्स, लर्नर तथा हेन्सन जैसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने केन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त तथा नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ब्याज का ऋणयोग्य-कोष सिद्धान्त के महत्वपूर्ण अंशों को मिलाकर ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त बनाया जिसे IS-LM प्रारूप वक्र का नाम दिया गया। इस आधुनिक सिद्धान्त को नव कीन्सियन सिद्धान्त भी कहा जाता है। कीन्स के ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त से तरलता अधिमान (L) और मुद्रा की मात्रा (M) को लिया गया। नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त से निवेश (I) एवं बचत (S) को लिया गया। ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त में चार तत्वों (निवेश, बचत, तरलता अधिमान तथा मुद्रा की मात्रा) को शामिल किया गया। इस प्रकार आधुनिक सिद्धान्त IS-LM प्रारूप वक्र में मौद्रिक तथा वास्तविक तत्व दोनों को शामिल किया गया।

आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या दो अनुसूचियों पर आधारित है-

(1) IS अनुसूची जो कुल बचत तथा कुल निवेश की समानता को व्यक्त करती है।

(2) LM अनुसूची जो मुद्रा की माँग तथा पूर्ति में समानता को व्यक्त करती है।

ब्याज की संतुलित दर पर वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्र संतुलन की अवस्था में होते हैं। वस्तुओं का बाजार और मुद्रा-बाजार एक दूसरे से अलग होने पर भी इनमें एक साथ संतुलन की अवस्था में राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दरें निर्धारित होती हैं।

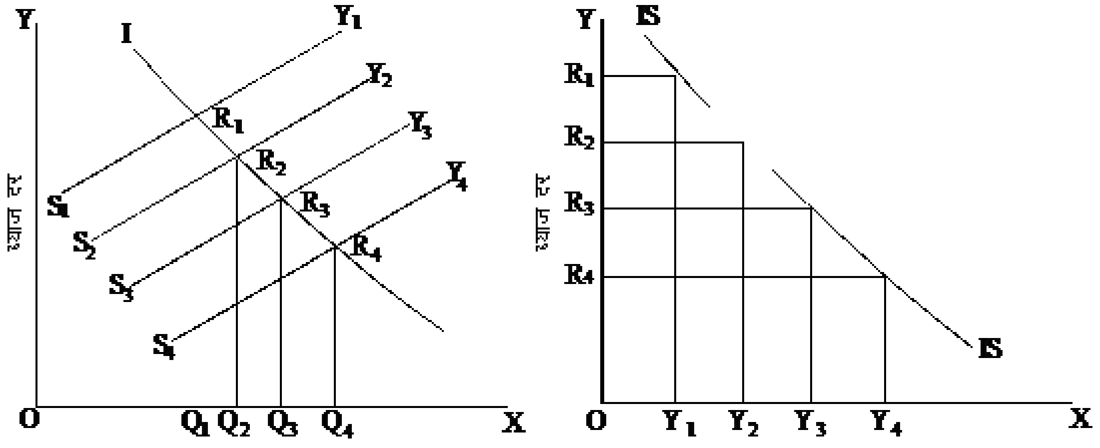

रेखाचित्र 10.5

ध्यान दें- बचत एवं निवेश वास्तविक तत्व है तथा मुद्रा की माँग और पूर्ति मौद्रिक तत्व है।

IS वक्र- IS वक्र ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त से प्राप्त किया गया है। IS अनुसूची से हमें उस ब्याज दर तथा आय स्तर का पता चलता है जिस पर बचत और निवेश एक दूसरे के बराबर होते हैं। IS वक्र को हम रेखाचित्र के द्वारा दिखा सकते हैं। रेखाचित्र 10.5(a) में Y_1, Y_2, Y_3 तथा Y_4 विभिन्न आय स्तरों को व्यक्त करते हैं। इन

विभिन्न आय स्तरों पर बचत की मात्रा S_1Y_1, S_2Y_2, S_3Y_3, S_4Y_4 वक्रों के द्वारा व्यक्त की जाती है। II निवेश वक्र है। S_1Y_1 आय स्तर पर R_1Q_1 ब्याज दर, बचत और निवेश के बीच संतुलन स्थापित करती है।
जैसे-जैसे आय स्तर में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे बचत व निवेश में भी वृद्धि होती जाती है। Y_1, Y_2, Y_3 तथा Y_4 आय स्तर की वृद्धि को दर्शाते हैं तथा R_1, R_2, R_3, R_4 बचत और निवेश की वृद्धि को दर्शाते हैं। आय और बचत एवं निवेश में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है अर्थात् आय में भी वृद्धि के साथ बचत और निवेश में भी वृद्धि होती है। यदि बचत तथा निवेश में समानता लाने वाली ब्याज की विभिन्न दरों को तत्सम्बन्धी आय स्तरों के साथ जोड़ दिया जाय तो IS वक्र प्राप्त हो जाता है। रेखाचित्र 10.5 (b) में IS वक्र दायीं ओर नीचे गिरता हुआ है क्योंकि आय के ऊँचे स्तर पर बचत अधिक होती है परन्तु बचत अधिक होने पर ब्याज दर नीची होती है। इस प्रकार जब आय बढ़ती है तो बचत की वृद्धि के साथ-साथ ब्याज दर में कमी होती है। ब्याज दर गिरने से निवेश बढ़ता है और बचत के बराबर हो जाता है। IS वक्र बचत एवं निवेश वक्रों की स्थितियों पर निर्भर करता है।

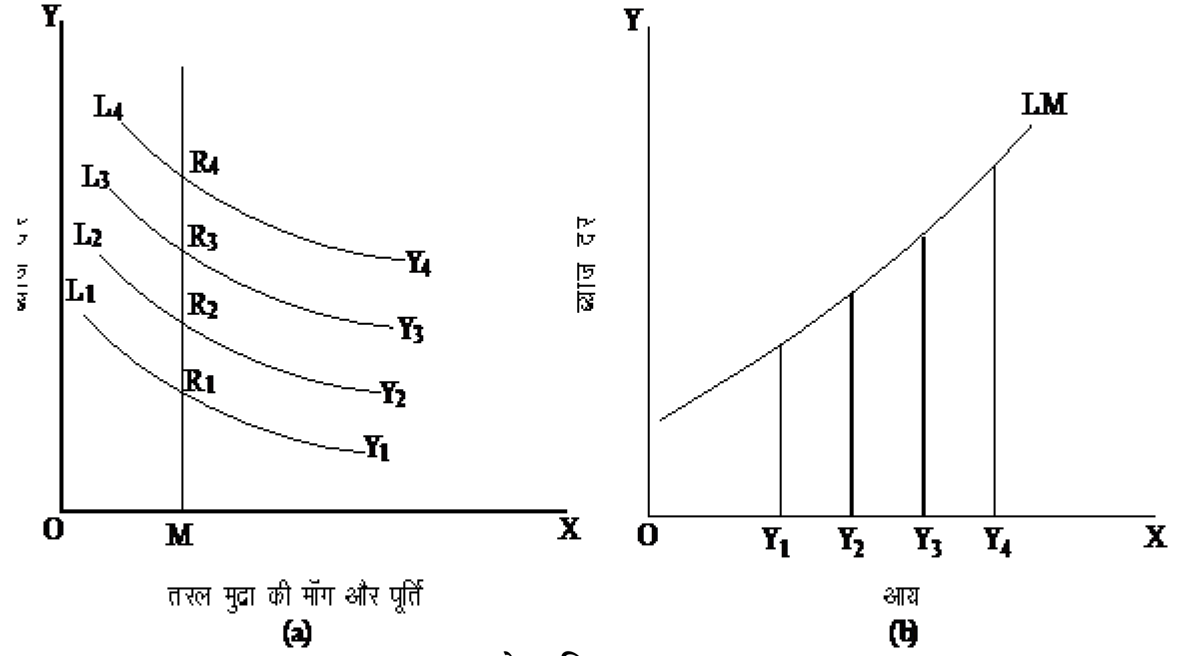

रेखाचित्र 10.6

LM वक्र- LM वक्र कीन्स के तरलता अधिमान सिद्धान्त से प्राप्त किया गया है। आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता अधिमान (L) तथा मुद्रा अधिकारियों द्वारा निर्धारित की गयी मुद्रा की मात्रा (M) को साथ मिलाकर (LM) वक्र का निर्माण किया जाता है। LM वक्र को रेखाचित्र 10.6 में दिखाया गया है। रेखाचित्र 10.6 (a) में OM मुद्रा की पूर्ति है जिसे स्थिर माना गया है क्योंकि यह मुद्रा अधिकारियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। Y_1, Y_2, Y_3 ,Y_4 विभिन्न बढ़ती हुई आय स्तर को प्रदर्शित कर रहा है। L_1Y_1, L_2Y_2, L_3Y_3 तथा L_4Y_4 विभिन्न आय स्तरों पर तरलता अधिमान वक्र है जो विभिन्न आय-स्तरों पर नकदी की माँग को बता रहा है। मुद्रा की पूर्ति को निश्चित व ब्याज निरपेक्ष मान लिया गया है। यह OM के बराबर संतुलन की स्थापना के लिए मुद्रा को नकदी माँग (L) तथा पूर्ति (M) में समानता होना आवश्यक है। L_1आय स्तर पर मुद्रा की माँग तथा पूर्ति में संतुलन ब्याज दर R_1M पर स्थापित होता है। ऊँची आय स्तर पर ब्याज दर ऊँची है तथा कम आय स्तर पर ब्याज दर नीची है। रेखाचित्र 10.6 (b) में विभिन्न आय स्तर पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति में संतुलन लाने वाली ब्याज दर को जोड़ने से LM वक्र प्राप्त होता है। यह वक्र मौद्रिक क्षेत्रों में संतुलन को व्यक्त करता है। LM वक्र बायीं से दायीं को ओर उठा हुआ है क्योंकि आय बढ़ने पर नकदी की माँग बढ़ती है तथा ब्याज दर भी बढ़ता है। इसके विपरीत आय में कमी होने पर नकदी की माँग व ब्याज दर में भी कमी आती है। आय में कमी होने पर लेनदेन के लिए मुद्रा की माँग में

कमी आ जाती है जिससे ब्याज दर गिर जाती है। ब्याज दर कम होने पर सट्टा उद्देश्य में मुद्रा की माँग बढ़ती है इसलिए ब्याज दर न्यूनतर दर से नीचे नहीं जा पाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ IS और LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं। रेखाचित्र 10.7 में IS और LM वक्र एक दूसरे को बिन्दु R पर काट रहे हैं। इस बिन्दु Rपर ब्याज दर तथा आय स्तर का निर्धारण साथ-साथ होता है। इस बिन्दु R पर बचत और विनियोग मे संतुलन स्थापित होने के साथ-साथ मुद्रा की माँग एवं पूर्ति में भी संतुलन स्थापित होता है। IS तथा LM वक्र में परिवर्तन होने पर ब्याज दर भी प्रभावित होती है। रेखाचित्र 10.7 से यह पता चलता है कि IS वक्र के दायीं ओर बढ़ने से आय और ब्याज दर में वृद्धि होती है। इसके विपरीत IS वक्र स्थिर रहने पर यदि LM वक्र के दायीं ओर बढ़ने से ब्याज दर में कमी आती है।

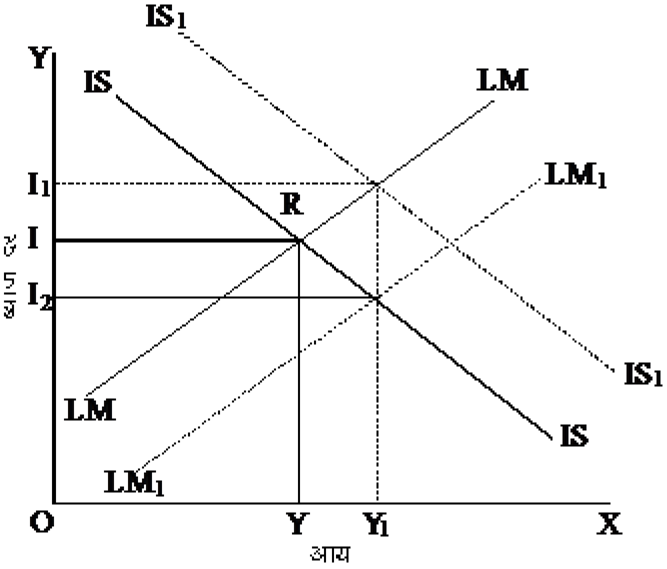

रेखाचित्र 10.7 ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त

IS-LM प्रारूप वक्र की आलोचना

IS-LM वक्र ब्याज दर के निर्धारण से सम्बन्धित एक सामान्य, व्यावहारिक और अधिक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यह सिद्धान्त एक ओर राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों में समन्वय लाता है तो दूसरी ओर आय निर्धारण के सिद्धान्त को मुद्रा सिद्धान्त के साथ जोड़ता है। उपर्युक्त गुणों के बावजूद, IS-LM प्रारुप वक्र में अनेक त्रुटियों के कारण इसकी आलोचना की जाती है जो निम्नवत है-

(1) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि ब्याज दर पूर्ण रुप से परिवर्तनशील है। यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा ब्याज दर को स्थिर रख दिया जाय तो इस सिद्धान्त की समायोजन प्रक्रिया कार्य नहीं कर पायेगी।

(2) इस सिद्धान्त में विनियोग को ब्याज सापेक्ष माना गया है, अर्थात ब्याज दर में परिवर्तन होने पर विनियोग में परिवर्तन होता है। व्यापारिक रूप में ऐसा न होने पर समायोजन प्रक्रिया कार्य नहीं करेगी।

(3) डॉन पेटिन्कन के अनुसार इस सिद्धान्त में कीमत स्तर के परिवर्तन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। मुद्रा की पूर्ति, उपभोग प्रवृत्ति, बचत, विनियोग तथा मुद्रा की माँग में परिवर्तन होने पर ब्याज दरों तथा राष्ट्रीय आय में परिवर्तन के साथ-साथ वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें भी प्रभावित होती हैं। इसलिए कीमतों को सम्मिलित करना आवश्यक है।

(4) डॉन पेटिन्किन तथा मिल्टन फ्रिडमैन के अनुसार अर्थव्यवस्था को मौद्रिक तथा वास्तविक क्षत्रों में विभाजन करना अव्यावहारिक है। वास्तविकता यह है कि दोनों क्षेत्र एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।

10.8 अभ्यास प्रश्न

(1) लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रमुख अर्थशास्त्रियों के नाम बताइए।

(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के प्रमुख तत्व बताइये।

(ग) ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक तथा मौद्रिक सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?

(घ) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त क्यों कहते हैं?

(ङ) कीन्स के ब्याज सिद्धान्त को तरलता अधिमान का सिद्धान्त क्यों कहा जाता है।

(च) कीन्स का ब्याज सिद्धान्त में मुद्रा की माँग किन उद्देश्यों के लिए की जाती है।

(2) सत्य/असत्य बताइये-

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर केवल बचत और निवेश का फलन है।

(ख) ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त को प्रतिष्ठित सिद्धान्त भी कहा जाता है।

(ग) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण मुद्रा अधिकारियों की नीति के निर्णय के अनुसार होता है।

(घ) 'तरलता जाल' में फँसी अर्थव्यवस्था को उबारने के लिए मौद्रिक नीति का सहारा लेते हैं।

(ङ) बचत और निवेश वास्तविक तत्व है

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) ब्याज के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को कहा जाता है-

(अ) बचत-निवेश सिद्धान्त

(ब) समय-अधिमान उत्पादकता सिद्धान्त

(स) ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त

(द) उपर्युक्त सभी

(ख) ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्रियों है-

(अ) गुन्ना मिर्डल

(ब) नट विकसेल

(स) बटिल ओलिन

(द) एरिक लिन्दाल

(ग) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त में मुद्रा की माँग -

(अ) बचत की माँग

(ब) निवेश की माँग

(स) तरलता अधिमान की माँग

(द) इनमें से कोई नहीं

(घ) ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया -

(अ) जे.एम.कीन्स

(ब) मार्शल

(स) नट विकेसल

(द) राबर्टसन

(ङ) IS तथा LM अनुसूचियों के आधार पर ब्याज दर का प्रतिपादन किसने किया।

(अ) स्वीडिश अर्थशास्त्रियों

(ब) जे.एम.कीन्स

(स) नव-कीन्सियन अर्थशास्त्रियों

(द) मुद्रावादी अर्थशास्त्रियों

(4) एक शब्द अथवा एक पंक्ति में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) इंग्लैंण्ड में ब्याज का ऋणयोग्य-कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया था?

(ख) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन है?

(ग) कीन्स के प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइये।

(घ) कीन्स के ब्याज तरलता अधिमान सिद्धान्त में माँग की जाने वाली मुद्रा में मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा क्यों कहा गया है।

(ङ) ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त किस-किस सिद्धान्त को मिलाकर बनाया गया है।

(5) रिक्त स्थान भरिए-

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त में ब्याज के निर्धारण में ... तथा ... को महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है।

(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के पूर्ति पक्ष में ...... तथा माँग पक्ष में .... सम्मिलित है।

(ग) सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की माँग मुख्यतया ...... को व्यक्त करती है।

(घ) सट्टा उद्देश्य से की गयी नकदी की माँग वर्तमान ब्याज दर की अपेक्षा .... से अधिकतम प्रभावित होती है।

(ङ) कीन्स ने यह प्रतिपादित किया कि ब्याज दर तथा बॉण्ड के मूल्य में .... सम्बन्ध होता है।

10.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि ब्याज का नव-प्रतिष्ठित सिद्धान्त जिसे ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त कहते हैं तथा कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त का जोड़ है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर का आधुनिक सिद्धान्त यह बताता है कि ब्याज दर तथा आय स्तर दोनों का निर्धारण चार तत्वों पर आधारित होता है- (1) निवेश क्रिया अथवा पूँजी की सीमान्त दक्षता, (2) बचत क्रिया अथवा उपभोग प्रवृत्ति, (3) तरलता अधिमान क्रिया तथा (4) मुद्रा की मात्रा । आधुनिक सिद्धान्त में IS ऋण योग्य कोष सिद्धान्त से लिया गया है तथा LM वक्र ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त से लिया गया है। जिस बिन्दु पर IS और LM वक्र एक दूसरे को काटते हैं वहीं पर ब्याज दर का निर्धारण होता है।

10.10 शब्दावली

- सीमान्त उत्पादकता- उत्पादन में प्रयुक्त अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से है।
- ऋणयोग्य कोष- संचय- संचय और ब्याज दर में विपरीत सम्बन्ध होता है। ब्याज दर ऊँची होने पर नकद कोषों के संचय की माँग कम होती है तथा ब्याज दर में कमी आने पर नकद कोषों के संचय की माँग में वृद्धि होती है।
- बचत- ब्याज दर और बचत में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।
- तरलता अधिमान की माँग- तरलता अधिमान की माँग से अभिप्राय नकदी की माँग से है।
- आय सापेक्ष- आय सापेक्ष से तात्पर्य आय स्तरं में होने वाले परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होने से है।

- ब्याज सापेक्ष- ब्याज दर में परिवर्तन से प्रभावित होना।
- ब्याज निरपेक्ष- ब्याज दर में परिवर्तन से प्रभावित न होना।

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के प्रमुख अर्थशास्त्रियों के नाम हैं- मार्शल, पीगू, कैसल्स, बालरस, टॉसिंग तथा नाईट।

(ख) ब्याज के ऋणयोग्य कोष सिद्धांत के चार प्रमुख तत्व हैं- शुद्ध निवेश, शुद्ध संचय, बचतों का विसंचय तथा विनिवेश। शुद्ध निवेश तथा शुद्ध संचय ऋणयोग्य कोष की माँग के तत्व हैं तथा ऋणयोग्य कोष की पूर्ति में बचत तथा बैंक साख में विस्तार के कारण मुद्रा पूर्ति सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त पिछली बचतों का विसंचय तथा विनिवेश को भी शामिल किया जाता है।

(ग) ऋणयोग्य कोष सिद्धांत को ब्याज का वास्तविक सिद्धांत इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धांत के अंतर्गत वस्तु एवं सेवाओं को शामिल किया गया है तथा मौद्रिक सिद्धान्त इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें वस्तु एवं सेवाओं के साथ-साथ बैंक मुद्रा, विसंचय एवं विनिवेश भी सम्मिलित होता है। इसलिए इस सिद्धान्त को ब्याज का वास्तविक एवं मौद्रिक सिद्धान्त भी कहते हैं।

(घ) ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर पूँजी की माँग (अर्थात् निवेश की माँग) उसकी कुल पूर्ति (अर्थात बचतों की पूर्ति) के बराबर होती है। इस बिन्दु पर माँग एवं पूर्ति एक दूसरे को काटते हैं इसलिए इस सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त कहा जाता है।

(ङ) कीन्स के शब्दों में ब्याज वह प्रतिफल है जो एक निश्चित समय के तरलता के परित्याग के लिए होता है। यही कारण है कि कीन्स के इस सिद्धान्त को तरलता अधिमान सिद्धान्त कहते हैं।

(च) कीन्स का ब्याज सिद्धान्त में मुद्रा की माँग तीन उद्देश्यों के लिए की जाती है- (1) लेन-देन या व्यापारिक उद्देश्य, (2) सतर्कता, पूर्वोपाय प्रेरक या दूरदर्शिता उद्देश्य तथा (3) पूर्वकल्पीय प्रेरक या सट्टा उद्देश्य

(2) सत्य/असत्य बताइये-

(क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य,

(घ) असत्य, राजकोषीय नीति का सहरा लिया जाता है,

(ङ) सत्य

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) (अ) बचत निवेश सिद्धांत,

(ख) (ब) नट विकसेल

(ग) (स) तरलता अधिमान की माँग,

(घ) (अ) जे.एम.कीन्स,

(ङ) (स) नव-कीन्सियन अर्थशास्त्रियों

(4) एक शब्द अथवा एक पंक्ति में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) सर डेविस रॉबटर्सन

(ख) प्रो. मार्शल,

(ग) General Theory of Employment Interest and Money,1936

(घ) ब्याज तरलता अधिमान सिद्धांत में माँग की जाने वाली मुद्रा को निष्क्रिय मुद्रा कहा गया है क्योंकि इसपर कोई ब्याज या आय नहीं प्राप्त होती है,

(ङ) ब्याज का आधुनिक सिद्धांत कीन्स के ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धांत तथा नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के ब्याज का ऋणयोग्य कोष सिद्धान्त के महत्वपूर्ण अंशों को मिलाकर बनाया गया है।

(5) रिक्त स्थान भरिए-

(क) निवेश, बचत,

(ख) मुद्रा और बचत, निवेश और संचय

(ग) संचय की प्रवृत्ति

(घ) भविष्य में संभावित दर,

(ङ) विलम्ब।

10.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सेठी, टी.टी. (2007-08), मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
- लाल, एस.एन. (2003), अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- सेठ, एम.एल. (2008), मौद्रिक अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

10.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Dillard, Dudley: *The Economics of J.M.Keynes,* 1948
- Fisher, Irving: *The Theory of Interest*, 1954
- Hensen, Alvin H: *A Guide to Keynes,* 1953
- Keynes, J. M. : *The General Theory of Employment, Interest and Money,* 1936

10.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त- IS-LM प्रारूप वक्र की व्याख्या कीजिए। तथा इसकी आलोचना कीजिए।
2. कीन्स का ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त चित्र द्वारा समझाइए।

इकाई 11 : केन्द्रीय बैंक
(UNIT 11 : CENTRAL BANK)

11.1 प्रस्तावना
11.2. उद्देश्य
11.3 केन्द्रीय बैंक की परिभाषायें
11.4 केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की तुलना
11.4.1 समानताएं
11.4.2 असमानताएं
11.5 केन्द्रीय बैंक के कार्य
11.6 केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध
11.7 केन्द्रीय बैकों के निर्देशक सिद्धान्त
11.8 आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की भूमिका
11.9 अभ्यास प्रश्न
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.15 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

किसी भी देश का शिखर बैंक उसका केन्द्रीय बैंक होता है जो उस देश की मौद्रिक एवं वित्तीय प्रणाली की केन्द्रीय धुरी के समान है। सरकार की आर्थिक क्रियायें केन्द्रीय बैंक के माध्यम से ही संचालित होती हैं । विभिन्न देशों में इसके अलग-अलग नाम हैं जैसे भारत में इसे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, इंग्लैंड में में बैंक आफ इंग्लैण्ड, अमेरिका में फेडरल रिजर्व सिस्टम, फ्रांस में बैंक ऑफ फ्रांस, स्वीडन में स्विस बैंक इत्यादि नामों से जाना जाता है।

एक देश की बैंकिंग व्यवस्था में उस देश की केन्द्रीय बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से अपना निर्देशन प्राप्त करते हैं और विभिन्न प्रकार से इस पर निर्भर रहते हैं।

एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है। व्यवसाय को नियमित करने तथा मौद्रिक नीति को लागू करने में केन्द्रीय बैंक अहम् भूमिका निभाता है। इसके महत्व को देखते हुये बैंकिंग व्यवस्था में केन्द्रीय बैंकिंग के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना आवश्क हो जाता है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेगें कि -

- ✓ केन्द्रीय बैंक क्या है।
- ✓ इसके विभिन्न कार्य क्या-क्या हैं।
- ✓ केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक में क्या अंतर है।
- ✓ केन्द्रीय बैंक की साख नियंत्रण की कौन-कौन से रीतियां हैं।
- ✓ भारत के रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के प्रमुख कार्य क्या हैं।
- ✓ केन्द्रीय बैं का विकास किस प्रकार हुआ।
- ✓ केन्द्रीय बैंक के मुख्य निर्देशक सिद्धान्त क्या हैं।
- ✓ आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की क्या भूमिका है।

11.3 केन्द्रीय बैंक की परिभाषा

देश के मौद्रिक तथा बैकिंग क्षेत्र में मुख्य स्थान होने के कारण उसे देश के केन्द्रीय बैंक की संज्ञा दी गयी है। इस केन्द्रीय बैंक को देश के अधिनियम द्वारा कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की जाती हैं जिसके द्वारा यह अन्य व्यापारिक बैंकों को नियंत्रित करती है।

केन्द्रीय बैंक की कई परिभाषाएं उसके कार्यो पर आधारित हैं।

हॉट्रे के विचार में केन्द्रीय बैंक बैंकों का बैंक है क्योंकि यह अन्य बैंकों के लिये अन्तिम युग का ऋणदाता का कार्य करता है।

क्राउथर के अनुसार *''केन्द्रीय बैंक का अन्य बैकों के साथ ठीक वही सम्बन्ध होता है जैसा स्वयं अन्य बैंकों का जनता के साथ होता है।''*

शॉ के अनुसार *''केन्द्रीय बैंक देश में साख मुद्रा का नियन्त्रण रखने वाला बैंक है।''*

केन्ट के अनुसार *''केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है, जिसे सामान्य जनहित को दृष्टि में रखते हुए मुद्रा की मात्रा के विस्तार और संकुचन का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है।''*

ए.सी.एल.डे. का कहना है *''केन्द्रीय बैंक वह है जो मौद्रिक एवं बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित एवं स्थिर करने में सहायक होता है।''*

वेरा स्मिथ के अनुसार *"केन्द्रीय बैकिंग की प्राथमिक परिभाषा है - ऐसी बैकिंग प्रणाली जिसमें कोई एकल बैंक करेन्सी नोट जारी करने का पूर्ण अथवा अवशिष्ट एकाधिकार रखता है।"*

सैम्यूल्सन के द्वारा दी गयी व्यापक परिभाषा के अनुसार *"केन्द्रीय बैंक बैंकरों का बैंक है इसका कर्तव्य मौद्रिक आधार को नियन्त्रित करना है और इस उच्चस्तरीय मुद्रा के नियन्त्रण के माध्यम से समुदाय को मुद्रा पूर्ति को नियन्त्रित करना है।"*

केन्द्रीय बैंक की उचित परिभाषा:- केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है जो देश की मौद्रिक बैकिंग तथा साख व्यवसाय का इस प्रकार नियमन एवं निर्देशन करती है जिससे देश की आर्थिक प्रगति वांछित गति से उचित दिशाओं में होती रहै।

11.3.1 केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता:-

केन्द्रीय बैंक किसी भी देश के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी आवश्कता विभिन्न कारणों से होती है। एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है।

11.4 केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की तुलना

11.4.1 समानता:-

- दोनों केन्द्रीय एवं वाणिज्यक बैंक मुद्रा का व्यवसाय करते हैं। जहां केन्द्रीय बैंक मुद्रा का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक मुद्रा का लेन-देन और साख मुद्रा का निर्माण करता है।
- दोनो ही साख का निर्माण करते हैं। केन्द्रीय बैंक नोटों का निर्गमन करके साख का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक व्युत्पन्न जमाओं के रूप में साख निर्माण में सहायक है।
- दोनों ही बैंक न तो अचल सम्पत्ति के आधार पर ऋण और न ही दीर्घकालीन ऋण देते हैं।

11.4.2 असमानताएं:-

केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के मध्य असमानताओं को एक सारिणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है।

क्र0सं0	अन्तर का आधार	केन्द्रीय बैंक	व्यापारिक बैंक
1.	संख्या	अमेरिका को छोड़कर (12 केन्द्रीय बैंक) अन्य सभी देशों में एक केन्द्रीय बैंक होता है।	प्रत्येक देश में अनेक व्यापारिक बैंक होते हैं।
2.	बैंकिग व्यवस्था	इसका स्थान सर्वोच्च होता है और	यह सम्पूर्ण प्रणाली का एक अंग

	में स्थान	अन्य बैंकों का नियंत्रण करता है।	होता है।
3.	नोट निर्गमन	इसे पत्र मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार होता है।	व्यापारिक बैंकों का यह अधिकार नहीं होता है।
4.	सरकार का बैंकर	यह सरकार की ओर से लेन-देन करते हैं।	इनका ऐसा कोई विशेष दायित्व नहीं होता है।
5.	जनता से सम्बन्ध	यह जन साधारण के साथ प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं करता है।	ये जन साधारण से व्यवसाय करते है।
6.	ब्याज	यह अपने पास जमा कराये गये धन पर ब्याज नहीं देता है।	ये अपने जमा धन पर ब्याज देते हैं।
7.	स्वामित्व	इन पर सरकार का स्वामित्व होता है।	ये प्रायः अंशधारियों के बैंक होते हैं।
8.	उद्देश्य	राष्ट्रहित में बैकिंग प्रणाली का सफल संचालन करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।	लाभ कमाना इनका मुख्यउद्देश्य है।
9.	ऋण	यह अन्तिम ऋणदाता है और व्यापारिक बैकों को बिल भुनाने की सुविधा देता है।	ये केन्द्रीय बैंक से ऋण लेते हैं।
10.	सम्बन्ध	यह व्यापारिक बैंकों का भी बैंक है।	ये केन्द्रीय बैंक के ग्राहक होते हैं।
11.	समाशोधन गृह	यह समाशोधन गृह का कार्य करता है।	केवल केन्द्रीय बैंक के निर्देश पर ही ये समाशोधन गृह का कार्य कर सकते हैं।
12.	स्वतंत्र नीति	अर्थव्यवस्था के हित में यह स्वतंत्र एवं क्रियाशील नीति अपनाता है।	ये केन्द्रीय बैंक के निर्देशन में अपना कार्य करते हैं।
13.	मुख्य प्रशासक	केन्द्रीय बैंक का मुख्य प्रशासक गवर्नर कहलाता है।	व्यापरिक बैंकों का मुख्य प्रशासक चेयरमैन कहलाते हैं।

11.5 केन्द्रीय बैंक के कार्य

केन्द्रीय बैंक के कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। प्रो.एम एच डी कॉक के अनुसार केन्द्रीय बैंक के कार्य निम्लिखित हैं:-

प्रमुख कार्य

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार।
2. सरकार का बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार।
3. बैकों का बैंक।
4. विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक।
5. व्यापारिक बैंकों के लिये अंतिम ऋणदाता
6. समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा।
7. साख नियन्त्रण।

अन्य कार्य

8. आर्थिक विकास में सहायक। 9. आँकड़ों को संकलित करना

1. **नोट निर्गमन का एकाधिकार**:- केन्द्रीय बैंक के इस कार्य के कारण इसे निर्गमन बैंक भी कहा जाता है। यह अधिकार इसको देने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:-
    - मुद्रा प्रणाली में एकरूपता।
    - साख निर्माण पर नियन्त्रण।
    - मुद्रा प्रणाली में लोच।
    - जनता का विश्वास केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये नोटों के प्रति अधिक रहता है।
    - नोटों से प्राप्त सम्पूर्ण लाभ सरकार को मिल जाता है।
    - मुद्रा के मूल्य में स्थिरता बनी रहती है क्योंकि मुद्रा की मात्रा को नियंत्रित करना आसान होता है।
    - केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी नीति का पालन करने में सुविधा होती है।

    इस प्रकार के केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन पर एकाधिकार रखकर देश में सस्ती व उपयुक्त चलन प्रणाली की व्यवस्था करता है तथा मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने का प्रयास करता है।

2. **सरकार के बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार** -

    सरकार का बैंकर:- इस रूप में केन्द्रीय बैंक सरकार को वो सेवाएं प्रदान करता है जो व्यापारिक बैंक जनता को प्रदान करते हैं। यह सरकारी विभागों के खाते रखता है और कोषों की व्यवस्था करता है। सरकार को आवश्यकता पड़ने पर ऋण भी देता है। सरकार की ओर से विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय भी करता है।

    सरकार के एजेण्ट के रूप में:- सरकारी अभिकर्ता के रूप में यह सरकार की ओर से प्रतिभूतियों ट्रेजरी बिलों आदि का क्रय-विक्रय करता है। सरकार जिन देशों से भी आर्थिक लेन-लेन के समझौते करती है, वे सब केन्द्रीय बैंक के माध्यम से किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय संस्थाओं तथा सम्मेलनों में केन्द्रीय बैंक के विशेषज्ञ सरकार के प्रतिनिधि का कार्य करते हैं।

    सरकार के आर्थिक सलाहकार के रूप में:- केन्द्रीय बैंक सरकार को आर्थिक व वित्तीय मामलों में सलाह भी देता है। केन्द्रीय बैंक की सहायता से सरकार मुद्रा एवं बैंकिंग सम्बन्धी नीति निर्धारित करती है। डी कॉक के अनुसार *"सरकारी बैंकर के रूप में केन्द्रीय बैंक केवल इसीलिए सुविधाजनक तथा मितव्ययी हैं, वरन् इसलिये भी कि सार्वजनिक वित्त तथा मौद्रिक मामलों में घनिष्ट सम्बन्ध होता है।"*

3. **बैंको का बैंक** :- केन्द्रीय बैंक का अन्य बैंकों के साथ सम्बन्ध वैसा ही होता है जैसा व्यापारिक बैंकों का ग्राहकों के साथ होता है। वह न सिर्फ व्यापारिक बैंकों की रकम जमा करता है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है। कुछ देशों में व्यापारिक बैकों को केन्द्रीय बैंक के पास नकद रखना अनिवार्य कर दिया गया है। संक्षेप में बैंको के बैंक के रूप में केन्द्रीय बैंक निम्न कार्य करता है -
    - व्यापारिक बैकों के नकद कोष अपने पास रखता है।
    - आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है।
    - व्यापारिक बैकों के श्रेष्ठ बिलों की पुर्नकटौती करता है।

    इसके कई लाभ हैं:-
    - राष्ट्रीय संकट के समय जमा राशि का समुचित रूप से उपयोग किया जाता है।
    - इससे साख प्रणाली में लोच उत्पन्न होती है।
    - इसे व्यापारिक बैकों की साख निर्माण नीति तथा ऋण नीति को नियंत्रित करने का अवसर मिल जाता है।

- बैंकों का आपसी लेन-देन सरल हो जाता है।

4. **विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षकः-** देश को विदेशी व्यापार विदेशी ऋण और अनुदानों से जितनी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है उसका श्रेष्ठतम प्रकार से प्रयोग करते हुए केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है।
   - सभी विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक में जमा होती है।
   - विदेशी मुद्रा के लेन-देन पर प्रतिबन्ध रखा जाता है।
   - विदेशी विनिमय का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक कार्यों के लिये ही किया जाता है।
   - विदेशी भुगतानों के लिये आवश्यक रकम की व्यवस्था की जाती है।
   - अंतराष्ट्रीय व्यापार के विकास तथा विनिमय दरों की स्थिरता के लिये विदेशी मुद्रा के कोषों को उचित मात्रा में बनाये रखने की आवश्यकता होती है।

   अतः केन्द्रीय बैंक अंतराष्ट्रीय विनिमय पर नियंत्रण रखता है।

5. **व्यापारिक बैंकों के लिये अंतिम ऋणदाताः-** केन्द्रीय बैंक दो प्रकार से व्यापारिक बैकों की सहायता करता है:-
   - श्रेष्ठ व्यापारिक बिलों की पुर्नकटौती द्वारा

     तथा
   - प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की धरोहर पर ऋण द्वारा।

   जब अन्य किसी साधन से उधार मिलने की आशा नहीं रहती है तब केन्द्रीय बैंक रकम उपलब्ध कराता है, इस कारण केन्द्रीय बैंक को अंतिम ऋणदाता कहा गया है । केन्द्रीय बैंक जो रकम उधार में देता है वह सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाता है।

   चूंकि केन्द्रीय बैंक अंतिम ऋणदाता के रूप में उपलब्ध होता है, इस कारण व्यापारिक बैकों को अधिक नकद कोष रखना पड़ता है और बैकों पर नियंत्रण रखना और सरल हो जाता है।

6. **समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा:-** केन्द्रीय बैंक एक समाशोधन ग्रह के रूप में ऐसी व्यवस्था करता है कि विभिन्न बैकों के पारस्परिक लेन-देन अथवा एक दूसरे पर लिखे गये चैकों के भुगतान का निबटारा केवल खातों में आवश्यक परिवर्तन द्वारा किया जा सके। इस प्रकार करोड़ों रूप्ये का हिसाब-किताब केवल खातों में जमा या नाम लिखने मात्र से हो जाता है। दैनिक लेन-देन का समायोजन केन्द्रीय बैंक द्वारा बड़े-बड़े नगरों में समाशोधन गृह की स्थापना द्वारा सहजता से हो जाता है।

7. **साख का नियन्त्रणः-** साख नियन्त्रण से तात्पर्य साख मुद्रा की मात्रा में देश की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुसार कमी अथवा वृद्धि करने से है। साख नियन्त्रण के माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है ताकि आर्थिक उच्चावचनों बचा जा सके। प्रो. शॉ ने साख नियन्त्रण को केन्द्रीय बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य माना है।साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है और कम होने पर मुद्रा संकुचन की स्थिति। केन्द्रीय बैंक साख को नियन्त्रित करके इन स्थितियों पर अंकुश लगता है। अतः यह इसका प्रधान कार्य माना गया है।

   1931 से पूर्व साख नियन्त्रण का मुख्य उद्देश्य विदेशी विनिमय दर में स्थिरता रखना होता था पर 1931 में स्वर्णमान के पतन के बाद इसका प्रमुख उद्देश्य आन्तरिक मूल्यों में स्थिरता बनाये रखना हो गया। वस्तुतः साख नियन्त्रण का उद्देश्य दोनों में स्थायित्व की प्राप्ति होना चाहिये।

कुछ अन्य कार्य

डी कॉक द्वारा बताये गये केन्द्रीय बैंक के उपर्युक्त सात कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के कुछ अन्य कार्य भी हैं जैसे:-

8. **आर्थिक विकास में सहायक होना:-** वर्तमान केन्द्रीय बैंक न महज आर्थिक स्थिरता अपितु आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन देते हैं व्यापारिक बैंकों को सरकारी बैंकों सहकारी बैंकों अन्य वित्तीय संस्थाओं तथा बिल बाजार के विकास एवं विस्तार के लिये केन्द्रीय बैंक कार्य करता है। ताकि निवेश के साधनों का विस्तार किया जा सके। सरकार को हीनार्थ प्रबन्धन के माध्यम से वित्तीय साधन उपलब्ध कराता है। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की भूमिका विकास सम्बन्घी कार्य के लिये अधिक सजग है।
9. **आँकड़ों को संकलित करना:-** देश को मुद्रा साख बैंकिग, विदेशी निवेश आदि से सम्बन्धित आर्थिक स्थिति के बारे में आंकड़े व सूचनाएं एकत्र करना तथा उन्हें जन हित में प्रकाशित करना केन्द्रीय बैंक के कार्यों में सम्मिलित है। ये आंकड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक विकास के लिए देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान कराते हैं। इससे आर्थिक नियोजन में सफलता मिलती है।

11.6 केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध

डी कॉक के अनुसार केन्द्रीय बैंक के सफल संचालन और अर्थव्यवस्था के हित के लिये आवश्यक है कि उसके कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा रहे। जैसे जनता से प्रत्यक्ष रूप में नकदी न स्वीकार करना, न ही जनता को प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्रदान करना बल्कि व्यापारिक बैकों के माध्यम से यह कार्य करने चाहिए। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्घा न हो अतएव केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कार्य नहीं करने चाहिए। उसे निष्पक्ष होकर देश की मुद्रा प्रणाली का संचालन करना चाहिए।

- भारत के संदर्भ में रिजर्व बैंक पर यह प्रतिबन्ध लगा दिये हैं कि वे निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता:-
- कोई उद्योग अथवा व्यापार नहीं खोल सकता।
- किसी बैंक या कम्पनी के शेयर नहीं खरीद सकता।
- अचल सम्पत्ति की जमानत पर ऋण नहीं दे सकता।
- बिना जमानत के ऋण नहीं दे सकता।
- मियादी बिल न लिख सकता है और न ही स्वीकार कर सकता है।
- जमाओं पर ब्याज नहीं दे सकता।

ऐसा करने से केन्द्रीय बैंक कार्यों में निष्पक्षता सरलता एवं सुरक्षा तथा तरलता बनाये रखता है।

11.7 केन्द्रीय बैकों के निर्देशक सिद्धान्त

केन्द्रीय बैकों का स्वरूप संगठन उद्देश्य तथा कार्य व्यापारिक बैकों से भिन्न होने के कारण केन्द्रीय बैंक के निर्देशन भी भिन्न होते हैं।

केन्द्रीय बैंक मुख्यतः निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाता है:-

1. **सम्पूर्ण देशहित की प्रमुखता का सिद्धान्त**:- लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं वरन लोक तथा राष्ट्र कल्याण की भावना से प्रेरित होकर केन्द्रीय बैंक को कार्य करना चाहिए। लोकहित प्राप्ति को गौण मानना चाहिए। डी कॉक भी यह मत प्रस्तुत करते हैं।
2. **मौद्रिक तथा वित्तीय स्थिरता का सिद्धान्त**:- मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता के अभाव में देश की आर्थिक स्थिति कमजोर हो सकती है। अतः केन्द्रीय बैंक को देश में मुद्रा, साख, विदेशी विनिमय तथा सार्वजनिक ऋण के नियमन के लिये एक सक्रिय नीति अपनाना चाहिए।

3. **राजनीतिक प्रभाव से स्वतंत्र रहने का सिद्धान्त अथवा निष्पक्षता का सिद्धान्त**:- किसी विशेष समुदाय अथवा राजनीतिक वर्ग का पक्षपात करते हुए नीति का निर्धारण न करें। निष्पक्ष नीति का अनुसरण करें। राजनीतिक दलबन्दी के प्रभाव से मुक्त रहते हुए सरकार का सहयोंग करना चाहिए चाहे वह किसी दल की सरकार हो।
4. **मुद्रा निर्गमन का एकाधिकार**:- केन्द्रीय बैंक के अतिरिक्त नोट निर्गमन का अधिकार अन्य किसी संस्था को नहीं होना चाहिए। तभी यह देश में मुद्रा तथा साख व्यवस्था पर उचित तथा प्रभावपूर्ण नियंत्रण रख पायेगा। न ही तब मुद्रा स्फीति का भय रहेगा और आर्थिक स्थिरता भी बनी रहेगी।
5. **साधारण बैंकिंग कार्यों से अलग**:- केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैकों की भांति सामान्य लेन-देन के कार्य न करें अर्थात वह न तो जनता से प्रत्यक्ष रूप से जमा राषियां स्वीकार करे और न ही सीधे ऋण दे। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए ये बैकिंग व्यवसाय के विकास के लिए हितकर रहेगा। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। केन्द्रीय बैंक को केवल केन्द्रीय बैंक के ही कार्य करने चाहिए। इससे देश की मुद्रा की पूर्ति पर उसका प्रभावपूर्ण नियंत्रण रहे एवं चलन प्रणाली में एकरूपता बनी रहे।

11.8 आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की भूमिका

विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली तथा मुद्रा एवं पूंजी बाजार विकसित करने में अधिक गतिशील भूमिका होती है। विकसित देशों में व्यापारिक बैंक का पूर्ण रूप से विकास हुआ रहता है एवं उनके मुद्रा एवं पूंजी बाजार भी सुगठित रहते हैं अतः इन देशों में इनकी भूमिका भिन्न होती है।

सेयर्स का मानना है कि अर्द्धविकसित देशों में केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कुछ कार्य भी करने चाहिए परन्तु यह ऐसे विवाद का विवाद विषय है । निम्न बिन्दुओं द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में व्यापारिक बैकिंग प्रणाली को विकसित करने में केन्द्रीय बैंक एक अहम् भूमिका निभाता है।

1. **प्रभावपूर्ण मौद्रिक नीति**:- अर्द्धविकसिक देशों में असंगठित बैंकिंग प्रणाली नियोजित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है। लोगों में बैकिंग आदत का अभाव होना बैंकों की संख्या कम होना अर्थव्यवस्था में विकास को रोकती है। ऐसे में केन्द्रीय बैंक द्वारा एक सुदृढ़ मौद्रिक नीति को अपनाना अहम् हो जाता है।
2. **पूँजी निर्माण में सहायक:-** केन्द्रीय बैंक को अर्द्धविकसित देशों में पूंजी के निर्माण में एक अहम भूमिका निभानी चाहिए। बचत को गतिशील बनाने हेतु केन्द्रीय बैंक उचित कदम उठा सकता है और इस बचत को उत्पादक कार्यों में निवेश करने के लिये बैकिंग प्रणाली को विकसित किया जाना चाहिए।
3. **साख की सुविधा में वृद्धि** :- अर्द्धविकसित देशों की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर होती है परन्तु इन क्षेत्रों में प्रचारित सुविधा न होने के कारण ये देश अर्द्धविकास के नियम चक्र में फंसे रहते हैं अतः केन्द्रीय बैंक को चाहिये कि वह ऐसी व्यवस्था करें कि ग्रामीण क्षेत्रों के कृषकों के माध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध हो सके। कृषि साख संस्थाओं का विकास होना चाहिए। उदाहरण के लिये भारत में नाबार्ड के माध्यम से रिजर्व बैंक यह सुविधा उपलब्ध कराता है।
4. **औद्योगिक क्षेत्र का विकास**:- विशिष्ट औद्योगिक वित संस्थाओं की स्थापना करके औद्योगिक क्षेत्र का विकास केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जैसे भारत में औद्योगिक विकास बैंक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना में केन्द्रीय बैंक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन संस्थाओं से देश की औद्योगिक वित की आवश्यकता की पूर्ति हो पा रही है।
5. **विदेशी विनिमय रिजर्व का प्रबन्ध:-** केन्द्रीय बैंक विदेशी कोषों का संरक्षक होता है अतः उसे बहुत सोच समझाकर इन विदेशी विनिमय का प्रयोग करना चाहिए ताकि देश में कच्चा माल, मशीनें आदि

आयातों की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके जिससे कि देश की भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके।

6. **सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध** :- प्रत्येक देश में केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण प्रबन्ध करता है। केन्द्रीय बैंक की एक महत्वपूर्ण भूमिका अर्थव्यवस्था के आर्थिक नियोजन के लिये वित्तीय व्यवस्था करना है। केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण का समुचित प्रबन्ध करता है जिससे देश को विदेशी ऋण पर आश्रित न रहना पड़े।
7. **व्यापरिक बैंकों के लिये प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की व्यवस्था** :- यह केन्द्रीय बैंक का कार्य है कि वह व्यापारिक बैंक के कुशल कार्य प्रणाली हेतु प्रशिक्षित कर्मचारियों की उचित व्यवस्था करे । सभी कर्मचारियों का उच्च प्रषिक्षण हेतु प्रबन्ध की जिम्मेदारी केन्द्रीय बैंक की होती है क्योंकि व्यापारिक बैंक इसके उचित व्यवस्था कराने में असक्षम होते हैं। साथ ही व्यापारिक बैंकों की शाखाओं का विस्तार और उनका सन्तुलित विकास केन्द्रीय बैंक को करना चाहिए।
8. **सरकार की सलाहकार की भूमिका**:- सरकार को मौद्रिक वित्तीय एवं तकनीकी सलाह देना केन्द्रीय बैंक के कार्यो में शामिल है किन्तु एक अर्द्धविकसिक दश में यह भूमिका और भी अहम हो जाती है। सरकार को आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी सर्वेक्षण करके रिपोर्ट प्रस्तुत करना केन्द्रीय बैंक की जिम्मेदारी है जिससे कि सरकार उनका अवलोकन करके उचित नीतियां बना सके।

ऊपर दिये बिन्दुओ से यह स्पष्ट होता है कि अर्द्धविकसित देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में केन्द्रीय भूमिका एक अहम् भूमिका अदा करता है।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्रीय बैंक के दो प्रमुख कार्य लिखिये।
2. भारत के केन्द्रीय बैंक का नाम बताइये और यह कहाँ स्थित है।
3. भारत का केन्द्रीय बैंक कब स्थापित हुआ था और इसका राष्ट्रीयकरण कब हुआ ?
4. केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के बीच दो मुख्य अंतर बताइये।

11.10 सारांश

एक देश की बैंकिंग व्यवस्था में उस देश की केन्द्रीय बैंक का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है। विभिन्न देशों में इसके अलग-अलग नाम हैं जैसे भारत में इसे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, इंग्लैंड में में बैंक आफ इंग्लैंण्ड, अमेरिका में फेडरल रिजर्व सिस्टम, फ्रांस में बैंक ऑफ फ्रांस, स्वीडन में स्विस बैंक इत्यादि नामों से जाना जाता है। केन्द्रीय बैंक को देश के अधिनियम द्वारा कुछ विशेष शक्तियां प्रदान की जाती हैं जिसके द्वारा यह अन्य व्यापारिक बैंकों को नियंत्रित करती है।

केन्द्रीय बैंक के कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन पर एकाधिकार रखकर देश में सस्ती व उपयुक्त चलन प्रणाली की व्यवस्था करता है तथा मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने का प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक सरकार को वो सेवाएं प्रदान करता है जो व्यापारिक बैंक जनता को प्रदान करते हैं। सरकार जिन देशों से भी आर्थिक लेन-लेन के समझौते करती है, वे सब केन्द्रीय बैंक के माध्यम से किये जाते हैं। केन्द्रीय बैंक सरकार को आर्थिक व वित्तीय मामलों में सलाह भी देता है। बैंको के बैंक के रूप में केन्द्रीय बैंक कार्य करता है। केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है और अंतराष्ट्रीय विनिमय पर नियंत्रण रखता है। जब अन्य किसी साधन से उधार मिलने की आशा नहीं रहती है तब केन्द्रीय बैंक रकम उपलब्ध कराता है, इस कारण केन्द्रीय बैंक को अंतिम ऋणदाता कहा गया है । केन्द्रीय बैंक एक समाशोधन

ग्रह के रूप में ऐसी व्यवस्था करता है कि विभिन्न बैकों के पारस्परिक लेन-देन अथवा एक दूसरे पर लिखे गये चैकों के भुगतान का निबटारा केवल खातों में आवश्यक परिवर्तन द्वारा किया जा सके। साख नियन्त्रण के माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है ताकि आर्थिक उच्चावचनों से बचा जा सके। केन्द्रीय बैंक साख को नियन्त्रित करके इन स्थितियों पर अंकुश लगता है। अतः यह इसका प्रधान कार्य माना गया है।

विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की भूमिका विकास सम्बन्घी कार्य के लिये अधिक सजग है। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्घा न हो अतएव केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कार्य नहीं करने चाहिए। उसे निष्पक्ष होकर देश की मुद्रा प्रणाली का संचालन करना चाहिए। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली तथा मुद्रा एवं पूंजी बाजार विकसित करने में अधिक गतिशील भूमिका होती है। विकासशील देशों में व्यापारिक बैकिंग प्रणाली को विकसित करने में केन्द्रीय बैंक एक अहम् भूमिका निभाता है।

11.11 शब्दावली

- संकुचन
- आर्थिक प्रगति
- मुद्रा चलन
- वित्तीय एज़ेण्ट
- पुर्नकटौती
- समायोजन
- एकाधिकार
- वित्तीय स्थिरता
- प्राथमिक उद्देश्य

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार, बैंकों का बैंक
2. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, मुम्बई
3. 1935, 1949
4. प्रथम अन्तर - केन्द्रीय बैंक की संख्या एक (अमेरिका को छोड़कर) होती है जबकि व्यापारिक बैंक अनेक होते हैं।, द्वितीय अन्तर - केन्द्रीय बैंक जन साधारण के साथ प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं कर सकता जबकि व्यापारिक जन साधारण के साथ व्यवसाय करते है।

11.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिहाई, जी. सी., जे पी मिश्रा एवं के. पुल गुप्ता: अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- सेठी, टी. टी.: मुद्रा बैकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
- झिंगन, एम. एल.: समष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिरिकन, नई दिल्ली।

11.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Mithani, D.M. (2008) International Economics, Himalaya Publishing House.
- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.
- Agrawal, Deepak (2009), Money Banking, Public Finance & International Economics, Himalaya Publishing House.

11.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक की भूमिका की विवेचना कीजिए।
2. केन्द्रीय बैंक क्या है ? इसके प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. केन्द्रीय बैंक के निर्देशन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

इकाई 12 : वाणिज्यिक बैंकिंग
(UNIT 12 : COMMERCIAL BANKING)

12.1 प्रस्तावना
12.2. उद्देश्य
12.3 वाणिज्यिक बैंकिंग: अर्थ एवं वर्गीकरण
12.4 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य
12.5 वाणिज्यिक बैंकों का विकास
12.5.1 स्वतंत्रता से पूर्ण वाणिज्यिक बैंकों का विकास
12.5.2 स्वतंत्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों का विकास
12.6 वाणिज्यिक बैंकों की समस्याएँ
12.7 अभ्यास प्रश्न
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वाणिज्यिक बैंकिंग-अर्थ, कार्य एवं विकास से सम्बन्धित से है। जिसमें वाणिज्यिक बैंकों के आशय व कार्यों को जानने के साथ-साथ इनके विकास की प्रक्रिया को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा। वाणिज्यिक बैंकिंग का मूल आधार मुद्रा के हस्तान्तरण में एक माध्यम बनकर अपना व्यवसाय चलाना है तथा उससे लाभ प्राप्त करना है। प्रारम्भ में इन बैंकों का कार्य व्यापारिक कार्यों तक ही सीमित था लेकिन वर्तमान में जनता के आर्थिक हितों को सुरक्षित करने की जिम्मेदारी इन बैंकों द्वारा स्वीकार की गयी है। इस आधार पर इन वाणिज्यिक बैंकों का विकास अलग-अलग क्रमों में हुआ है तथा उसकी गति भी समयानुसार बदलती रही है।

प्रस्तुत इकाई का वाणिज्य बैंकों के साथ-साथ व्यापारी वर्ग के व सामान्य जनता से भी सम्बन्ध है। इसीलिए इस इकाई के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अत्यधिक उपयोगिता प्रदान की जा सकती है। इसके साथ आप वाणिज्यिक बैंकों के विकास की गति को प्रभावित करने वाले कारणों का भी अध्ययन करेंगे। बैंकों के शाखा विस्तार की गति एवं दिशा का भी अध्ययन किया जायेगा।

12.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भंली-भांति समझ सकेंगे कि-

- ✓ वाणिज्यिक बैंकिंग क्या है तथा इसकी स्थापना का मूल उद्देश्य क्या है? ये बैंक कितने प्रकार के होते हैं?
- ✓ वाणिज्यिक बैंक किसके लिए, क्या कार्य करते हैं तथा वर्तमान में इनकी क्या उपयोगिता है? क्या ये वाणिज्यिक बैंक हमारे लिए भविष्य में भी उपयोगी सिद्ध होंगे?
- ✓ देश के आजाद होने से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों का विकास किस प्रकार हुआ तथा आजादी के बाद बैंकों के विकास में क्या परिवर्तन आया?
- ✓ सरकार द्वारा किये गये लगातार बैंकिंग सुधार प्रयासों के बाद भी ये वाणिज्यिक बैंक अनेक समस्याओं का सामना किस प्रकार कर रहे हैं?

12.3 वाणिज्यिक बैंकिंग: अर्थ एवं वर्गीकरण

आपको वाणिज्यिक बैंकिंग के नाम से यह आभास हो रहा होगा कि 'बैंकिंग' शब्द के साथ वाणिज्यिक शब्द क्यों लगाया गया है? अतः आपको नाम से ही थोड़ा अनुमान लगाना होगा कि वाणिज्यिक बैंकिंग का सम्बन्ध वाणिज्यिक क्रियाओं से अवश्य है। सामान्य रूप से वाणिज्यिक बैंकिंग के अन्तर्गत बैंक शामिल किये जाते है, जो जनता की बचतें एकत्रित करते हैं तथा उन्हें बड़ी तथा छोटी औद्योगिक एवं व्यापारिक इकाईयों को उधार लेकर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज पर व्यावासायिक लोगों को उधार देते हैं तथा लाभ कमाते हैं। वर्तमान में वाणिज्यिक बैंक व्यावासायिक व्यापारिक कार्यों के साथ गैर-व्यापारिक कार्यों में भी संलग्न हैं तथा विकासात्मक कार्यों में रूचि प्रकट कर रहें हैं। सारांश रूप में वाणिज्यिक बैंकिंग का मूल आधार लाभ कमाना है।

प्रो0 चैण्डलर के अनुसार इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक के नाम से न पुकारकर अन्य नाम से पुकारा जाना चाहिए। इन्होंने इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक कहना अनुचित तथा भ्रामक बताया। इन बैंकों के पास सामान्यतः अल्पकालीन राशियां ही जमा होती हैं इसीलिए ये अल्पकाल के लिए ही ऋण देने में समर्थ होती हैं। वाणिज्यिक बैंक कहलाने वाली बैंकिंग संस्थाओं के कार्यों का विस्तार हुआ है। वर्तमान में इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केवल व्यापारिक कार्यों के लिए ही ऋण नहीं दिया जाता बल्कि कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए भी ऋण उपलब्ध कराती है। इसके अतिरिक्त ये बैंक चैकों के भुगतान, वचत को प्रोत्साहन तथा अनेक प्रकार के कार्यों द्वारा अपने ग्राहकों की सेवा करते हैं। इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन एक महत्वपूर्ण कार्य है जो इनकी प्राथमिक जमाओं पर निर्भर करता है। इन बैंकों द्वारा सृजित साख विनिमय माध्यम का कार्य करती है। ये बैंक नये नोट नहीं

छापती है और न ही सिक्के ढालती है। इसीलिए चैण्डलर ने इन बैंकों को चैक जमा बैंक कहना उचित समझा। लेकिन व्यापारिक या वाणिज्यिक बैंक नाम अधिक प्रचलित हुआ है। सामान्य रूप से जनता द्वारा कहा जाने वाला बैंक का अभिप्राय ही वाणिज्यिक बैंक है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण निम्न रूप में किया गया है।

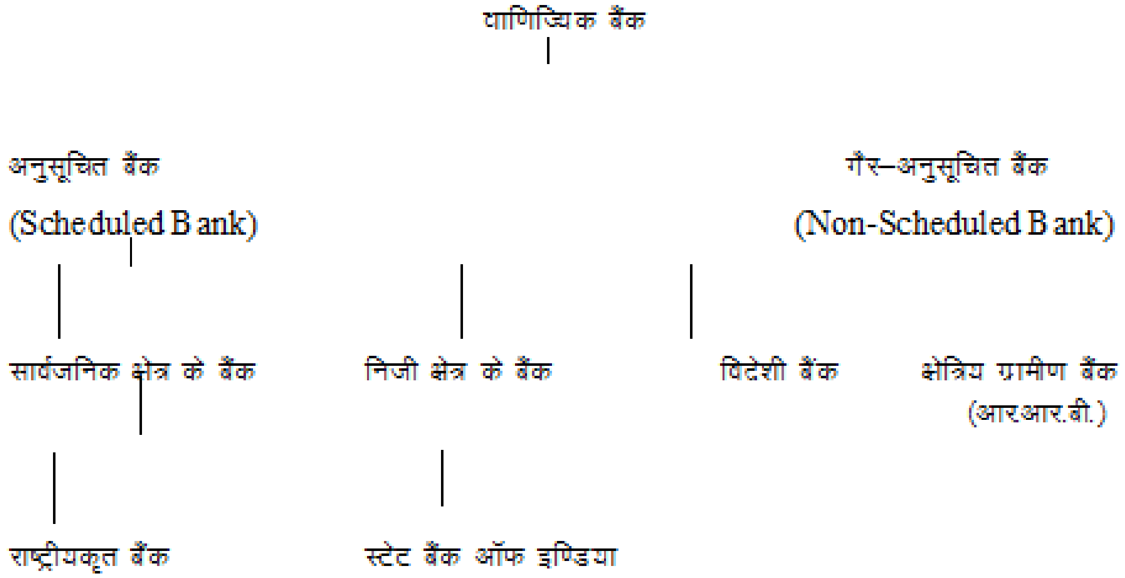

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अधीन वाणिज्यिक बैंकों को दूसरी अनुसूची में शामिल किया गया है। उन्हें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक कहा जाता है। इन बैंकों की प्रदत्त पूंजी तथा संचित राशि रू.5 लाख से कम नहीं होनी चाहिए तथा इन बैंकों द्वारा भारतीय रिजर्व बैंकों को इस बारे में संतुष्ट करना होता है कि इनका कार्य कलाप जमा कत्र्ताओं के हितों के अनुरूप किया जा रहा है इन बैंकों की स्थापना संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में होती है न कि एकल व्यापारी साझा फर्म के रूप में। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को अपनी जमा का एक निश्चित अंश भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकद रूप में रखना होता है तथा इनको भारतीय रिजर्व बैंकों के पास समय-समय पर बैंकिंग अधितनयम, 1949 के अन्तर्गत विवरण-पत्र भी भेजना होता है।

गैर-अनुसूचित बैंक- गैर-अनुसूचित बैंकों से हमारा तात्पर्य ऐसे बैंकों से है जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंकों अधिनियम 1934 की दूसरी अनुसूची में सम्मिलित नहीं किये गये हैं तथा ये बैंकों वैधानिक नगद आरक्षण आवश्यकताओं के अधीन हैं गैर-अनुसूचित बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंकों के पास एक निश्चित राशि नहीं रखनी होती है। ये बैंक अपने पास ही नगद राशी रखते हैं । इन बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंकों से उधार लेने तथा रियायती प्रेषण की सुविधा प्राप्त नहीं है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक - क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाऐं पहुँचाने के लिए की गयी थी जहाँ पहले से बैकिंग सेवाऐं उपलब्ध नहीं थी। प्रारम्भ में वर्ष 1975 में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी थी जो मुरादाबाद, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश), भिवानी (हरियाणा), जयपुर (राजस्थान) तथा मालदा (पश्चिमी बंगाल) में स्थापित की गयी। इनकी स्थापना देश में वैयक्तिक राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों के प्रायोजन पर की गयी। इन बैंकों का उद्देश्य छोटे तथा उपेक्षित किसानों, कृषि मजदूरों, दस्तकारों और छोटे उद्यमियों को ऋण उपलब्ध कराना था ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन सम्बन्धी क्रियाकलापों को बढ़ावा मिल सके तथा ग्रामीणों को स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजित हो सके। इन बैंकों की स्थापना ऐसी संकल्पना पर की गयी थी जिसमें सहकारी और वाणिज्यिक दोनों प्रकार की विशेषताऐं विद्यमान हो सकें।

अप्रैल 1997 से प्राथमिक क्षेत्र को ऋण देने का कार्य भी इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सौंप दिया गया। कुछ स्थितियों के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को रूपयों में अनिवासी खाते खोलने और रखने की स्वीकृति दी गयी। इन बैंकों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए सितम्बर 2005 में इन बैंकों को चरणवद्ध तरीके से आपसी विलय करने की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया गया। 31 मार्च 2010 में इन बैंकों की संख्या 82 थी जिसमें 46 विलयीकृत तथा 36 पृथक बैंक शामिल थीं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सिक्किम और गोवा के अलावा सभी राज्यों में कार्यरत हैं। 1987 के बाद कोई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक नहीं खोला गया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की कार्यप्रणाली में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेक समितियां गठित की गयी जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है।

दान्तेवाला समिति का गठन 1977 में किया गया था। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के संगठनात्मक ढाँचे में सुधार एवं कार्यों में संशोधन करके इनकी संरचना को और अधिक सुदृढ़ करने का सुझाव प्रस्तुत किया। इसी क्रम में 1979 में क्रेफिकार्ड समिति का गठन किया गया। इस समिति ने ग्रामीण साख को सुदृढ़ करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के महत्व को रेखांकित किया। इस समिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में बहुउद्देश्यीय एजेन्सी के रूप में ग्रामीण बैंकों की भूमिका को बढ़ाया जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का क्षेत्र व्यापक हो सका। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्यप्रणाली को और अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए 1989 में खुसरो समिति का गठन किया गया। इस समिति के आधार पर बैंकिंग सेवाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में दूर दराज तक ले जाने का उल्लेखनीय कार्य किया।

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में इन बैंकों को और अधिक उपयोगी बनाये जाना आवश्यक समझा गया। इस संदर्भ में वर्ष 2004 में केलकर समिति का गठन किया गया। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के उद्देश्यों की पुनः समीक्षा की तथा अपनी सिफारिशों में प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के पूंजी आधार को बढ़ाने का सुझाव दिया गया। वर्तमान में देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु ये बैंक बढ़ चढ़ कर कार्य कर रहे हैं।

12.4 वाणिज्यिक बैंकों के कार्य

वणिज्यिक बैंकों द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यों को निम्न लिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **बैंक जमा-** वाणिज्यिक बैंक सीधे तौर पर जनता या ग्राहकों के सम्पर्क में रहते हैं इसी लिए लोगों की बचत या अन्य स्त्रोतों से प्राप्त रूपये को जमा करते हैं। आपको यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये बैंक खाता प्रणाली के अन्तर्गत ही लोगों के रूपयों को अपने यहां जमा करते हैं। वाणिज्यिक बैंक तीन प्रकार की जमाऐं करते हैं 1. बचत जमा, 2. चालू जमा तथा 3. मियादी जमा।

   प्रथम प्रकार की जमा करने के लिए उस व्यक्ति के नाम बैंक में वचत खाता खोला जाता है तथा इस खाते में ही वह व्यक्ति अपनी वचतों को जमा करता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर इस वचत जमा को निकाल कर अपने कार्य सम्पादित करता है। इस प्रकार की जमा धनराशि पर बैंकें ग्राहक को एक निर्धारित ब्याज भी देता है। इस खाते से सप्ताह में केवल दो बार रूपये निकाला जा सकता है।

   द्वितीय प्रकार के अन्तर्गत बैंकों द्वारा जनता तथा व्यापारियों से चालू जमा प्राप्त करती हैं। इस प्रकार की जमाओं को कुछ ही समय बाद निकाला जा सकता है। इस प्रकार की जमाऐं वाणिज्यिक या व्यापारिक कार्यों के लिए की जाती है। इस प्रकार की जमाओं पर बैंक द्वारा बहुत कम ब्याज दी जाती है।

   तीसरे प्रकार से वाणिज्यिक बैंक मियादी जमा प्राप्त करती हैं। मियादी जमाऐं दीर्घकाल के लिए पूर्व निर्धारित समयावाधि के लिए ली जाती है। इस समयअवधि से पूर्ण जमा राशि को निकाला नहीं जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस मियादी जमा पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसी लिए इस प्रकार की जमाओं पर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दी जाती है। यह मियादी जमा बैंकिंग साख-सृजन तथा मांग की पूर्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी होती है।

2. **बैंक उधार-** वाणिज्यिक बैंकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ऋण देना है। ये बैंक सामान्य स्तर पर व्यापारिक क्रिया-क्रलापों के उद्देश्य हेतु ऋण देती हैं लेकिन यह ऋण अल्पकालीन होता है जैसे- तीन माह, छः माह या एक वर्ष के लिए। जब किसी व्यक्ति या व्यापारी को रूपये की आवश्यकता होती है तब वह बैंक में सम्पर्क करता है, बैंक को यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि बैंक की शर्तो पर ऋण की वापसी हो जायगी तथा ऋण का प्रयोग उद्देश्यपूर्ण होगा तो बैंक उसे ऋण प्रदान करती है। बैंक इस ऋण पर सामान्यत जमा ब्याज से अधिक ब्याज वसूल करती है। आपको यहां पर यह भी बताना अत्यन्त आवश्यक है कि बैंक इस उधार देने वाली राशी के बदले में जमानत लेती है जैसे- जमीन, मकान तथा अन्य परिसम्पत्ति से सम्बन्धित कागजात आदि।
3. **वस्तुओं की सुरक्षा सम्बन्धित कार्य-** बचत जमा तथा ऋण उपलब्धता के अलावा वाणिज्यिक बैंक जनता की मूल्यवान वस्तुओं की भी सुरक्षा करता है। वाणिज्यिक बैंकों में लॉकर्स की व्यवस्था की गयी है जिसमें लोगों के सोने-चाँदी के गहने व दूसरी अन्य मूल्यवान वस्तुऐं रखी जाती हैं। बैंक इन लोगों से वस्तुओं की सुरक्षा हेतु कुछ किराया स्वरूप धनराशि भी वसूलता है। लॉकर्स की एक चाभी ग्राहक के पास तथा एक चाभी बैंक के पास रहती है। व्यक्तियों को उनकी समस्याओं से खोने, रख-रखाव तथा चोरी जैसी समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है।
4. **विकाससात्मक कार्यों में सहयोग-** वर्तमान में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा विकासात्मक कार्यों में अत्यधिक सहयोग किया जा रहा है। सरकारी योजनाओं के क्रियसन्वयन में वित्तीय समावेशन बड़े स्तर पर किया जा रहा है। विकास सम्बन्धी योजनाओं को सीधे तौर पर वाणिज्यिक बैंकों से जोड़ा गया है तथा इन विकास योजनाओं में वित्तीय गड़बड़ी रोकने के लिए बैंकों का सहयोग लिया जा रहा है। तथा बैंकों द्वारा अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण करने का प्रयास किया गया है। सरकार कर्मचारियों का वेतन वित्तरण, धन का शीध्र हस्तात्तरण, सरकारी कार्यों तथा अन्य प्रपत्रों की विक्री का कार्य वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जा रहा है। इसके साथ बीमा किस्तों का भुगतान, चालान जमा करना, सरकारी बॉण्ड खरीदना तथा उनके आदेशानुसार वेचना आदि कार्यों में वणिज्यिक बैंकों की सहभागिता बढ़ी है।
5. **हामीदारी-** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा हामीदारी भी की जाती है। ये बैंक नये हिस्सों, विशेषकर ऋण पत्रों तथा अधिमान हिस्सों की हामीदारी करते हैं इसके लिए वाणिज्यिक बैंकों द्वारा व्यापारी बैंकिंग स्थापित किये हैं। ये भारतीय औद्योगिक घरानों और विदेशी फर्मों के बीच स्थगित भुगतान समझौते कराने का कार्य करते हैं। वाणिज्यिक बैंक अनुषंगी कम्पनियों द्वारा एक बड़े ग्राहक समूह को बहुत सी सेवाऐं उपलब्ध कराती हैं।
6. **खुदरा बैंकिंग-** वाणिज्यिक बैंक द्वारा खुदरा बैंकेंग का कार्य भी किया जा रहा है। खुदरा बैंकिंग से हमारा तात्पर्य गृह-ऋण, चिर स्थायी उपयोग ऋण जैसे टेलीवीजन, शिक्षा ऋणों से है। ये ऋण दीर्घकालीन भी होते हैं। वर्तमान में खुदारा बैंकेंग का तेजी से विकास हुआ है। नवीन तकनीकी तथा यांत्रिक स्वचालन के कारण इस प्रणाली को अत्यधिक बल मिला है।
7. **आढ़त क्रियाऐं-** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाऐं भी सम्पन्न की जाती हैं। यह एक नवीन सेवा है। इस क्रिया के अंत्तर्गत बैंक अपने वही खाता ऋणों को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं और खाते में प्राप्त होने वाली राशि किसी अनुषंगी कम्पनी को बेच देती है, जिसे आढ़तियां कहा जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को अनुषंगी कम्पनी कायम करने की स्वीकृति दे रखी है। इन बैंकों ने अपनी क्रियाओं का विविधीकरण अनुषंगी कम्पनियां कायम करके बहुत सी वित्तीय सेवाओं में कर लिया है। भारतीय स्टेट बैंक तथा केनरा बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाओं के लिए अपने अनुषंगी कम्पनियां स्थापित की हैं।

12.5 वाणिज्यिक बैंकों का विकास

यद्यपि भारत में बैंकिंग विकास का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हम वाणिज्यिक बैंकों के विकास के संदर्भ में एक सीमित दायरे में ही इसका अध्ययन कर सकेंगे जिसे निम्नरूप में रखा जा सकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व बैंकिंग विकास तथा स्वतन्त्रता के बाद का बैंकिंग विकास।

12.5.1 स्वतंत्रता से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों का विकास-

भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से ही 17वीं सदी में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। 1970 में भारत में प्रथम बैंक कोलकाता में 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' सथापित किया गया किन्तु विभिन्न कारणों से यह बैंक सफल संचालन नहीं कर सका। देश में निजी तथा सरकारी प्रयासों से तीन प्रेसीडेन्सी बैंक स्थापित किये गये। सन् 1806 में बैंक ऑफ मद्रास 1840 बैंक ऑफ बाम्बे तथा 1843 में सरकार का शेयर होने के कारण सरकार का इन बैंकों पर नियंत्रण था। सन् 1912 में तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इंण्डिया स्थापित किया गया जिसका जुलाई 1955 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसका नाम बदलकर 'स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया' कर दिया गया।

सन् 1860 से 1913 ई. तक की समय अवधि में संयुक्त पूंजी वाले बैंकों का विकास हुआ। इस समयावधि में अनेक वाणिज्यिक बैंकों की स्थापना हुई जैसे- इलाहाबाद बैंक (1906), पंजाब नेशनल बैंक (1894), बैंक ऑफ इण्डिया (1906), बैंक ऑफ बड़ौदा (1908), सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया (1911) तथा अन्य। वर्ष 1913 से 1939 के मध्य प्रथम विश्व युद्ध तथा अन्य कारणें से देश में वाणिज्यिक बैंकों का विकास रूक गया, लेकिन बैंकों के विकास की गति को मजबूत बनाये रखने के लिए 1930 में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति गठित की गयी जिसकी सिफारिशों पर RBI अधिनियम 1934 के आधार पर 1 अप्रेल 1935 को भारतिय रिजर्व बैंक स्थापित किया गया जिसके परिणाम स्वरूप भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विस्तार एवं विकास को बल मिला तथा इस दिशा में नए कदम उठाने के प्रयास हुए। इसी क्रम में सन् 1945 में भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जो भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास के लिए एक कारगर उपाय सिद्ध हुआ।

विश्व युद्धों के समय में बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाने के उद्देश्य से पुराने बैंकों द्वारा नयी शाखाऐं खोली गयी तथा नये-नये बैंकों की भी स्थापित किया गया।

12.5.2 स्वतंत्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों का विकास

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करने के योग्य बनाया जाय इसी दिशा में मार्च 1949 को भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंकों के निरीक्षण करने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को दिया गया इसके वाणिज्यिक बैंक समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी हो गये। बैंक प्रणाली को अत्यधिक सबल बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा छोटे बैंकों के बड़े बैंकों के साथ विलयन की नीति अपनायी गयी जियके परिणाम स्वरूप 1950-51 के बाद देश में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या में लगातार कमी दर्ज की गयी 1950-51 से 1970-71 समयावधि में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 430 से कम होकर केवल 87 रह गयी। 1960-61 में अनुसूचित बैंकों की संख्या 256 थी जो नवम्बर 1980 में केवल 4 रह गयी। 1950 के बाद बैंक जमाओं में भी निरन्तर वृद्धि हुई।

1 जुलाई 1955 को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा इसका नाम बदलकर स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया कर दिया गया। इसके साथ 8 अन्य बैंकों को सहायक बैंकों के रूप में बदल कर 'स्टेट बैंक समूह' गठित किया गया।

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर, स्टेट बैंक ऑफ जयपुर, स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर, स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, स्टेट बैंक ऑफ ट्रावनकोर,

जुलाई 2008 में स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र तथा जून 2009 को स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर का स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में विलय के परिणाम स्वरूप SBI समूह में बैंकों की संख्या वर्तमान में केवल 5 रह गयी है। 19 जुलाई 1969 को 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, बैंक ऑफ इण्डिया, पंजाब नेशनल बैंक, केनरा बैंक, यूनाइटेड कामर्शियल बैंक, सिंडीकेट बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदाए यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, देना बैंक, इलाहाबाद बैंक, इण्डिया बैंक, इण्डियन ओवरसीज बैंक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, पुनः 15 अप्रैल 1980 को निजी क्षेत्र के 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। आन्ध्रा बैंक, पंजाब एण्ड सिंध बैंक, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, विजया बैंक, कॉर्पोरेशन बैंक, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स। 4 सितम्बर 1993 को भारत सरकार द्वारा न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय पंजाब नेशनल बैंक में कर दिया गया। इससे देश में राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 20 से घटकर 19 रह गयी है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण सम्वैधानिकता के आधार पर किया गया है जो इन बैंकों के विकास में भी सहायक रहा है।

1. अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
2. गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक

वर्ष 1990-91 में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 271 थी जो वर्ष 2000-2001 में बढ़कर 297 हो गयी। वर्ष 2008-09 में इन बैंकों की संख्या घटकर 165 रह गयी। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों 82 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आर.आर.बी),19 राष्ट्रीयकृत बैंक, भारतीय स्टेट बैंक समूह के 5 बैंक, 1 आई.डी.बी.आई बैंक, 32 विदेशी बैंक तथा 26 निजी बैंक शामिल हैं।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या तथा जमा उधार के विकास को निम्न तालिका द्वारा आप आसानी से समझ सकते हैं।

तालिका अनुसूचित वाणिज्किय बैंकों का विकास-

वर्ष	बैंक संख्या	बैंक जमा(करोड़ रू.)	बैंक उधार(करोड़)
1950-51	430	820	580
1970-71	73	5910	4690
1990-91	271	192541	116300
2000-01	297	962610	511430
2007-08	172	3196941	2361916
2008-09	165	3834110	2775549
2011-12	-	5909082	4611852

स्रोत- 1. RBI- Report on currency and finance 2000-01

2. Hand book statistics on Indian economy (2009-2010)

देश में मात्र 4 गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का ही विकास हो सका है। गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक से रियायती प्रेषण तथा उधार लेने की सुविधा प्राप्त नहीं होती है, क्यों कि इन गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को निश्चित राशि भारतीय रिजर्व बैंक के पास न रखकर अपने पास रखने का अधिकार है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारतीय बैंक विदेशों में भी कार्य कर रहे हैं। 30 जून 2010 को 52 देशों में भारतीय बैंक कार्य कर रहे थे जिनमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बैंक भी शामिल थे। विदेशों में सार्वजनिक क्षेत्र के 16 तथा निजी क्षेत्र के 6 भारतीय बैंक अपनी सुविधाऐं प्रदान कर रहे हैं। इन भारतीय बैंकों के विदेशों में 232 शाखाऐं तथा 55 प्रतिनिधि कार्यालय संचालित थे। 30 जून 2010 को विदेशों में कार्यरत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक में निम्न बैंक शामिल थे - भारतीय बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इण्डिया, सिण्डिकेट बैंक तथा यूको बैंक।

28 देशों में भारतीय स्टेट बैंक के 42 शाखा कार्यालय, 5 सहायक संगठन, 4 संयुक्त उद्यम तथा 8 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ बड़ौदा के 46 शाखा कार्यालय, 8 सहायक बैंक, 1 संयुक्त उपक्रम बैंक तथा 3 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ इण्डिया की 14 देशों में 24 शाखाऐं हैं, 3 सहायक संगठन, 1 संयुक्त उद्यम तथा 5 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। भारतीय बैंकों के इग्लैण्ड में सबसे अधिक शाखा कार्यालय हैं, यहां पर 18 शाखा कार्यालय हैं। हॉगकोंग, फिजी तथा मौरिशस में 7-7 शाखाऐं हैं। वहरीन, मौरीशस केमैन द्वीप समूह और वहामास में विदेशी बैंकिंग इकाईयाँ स्थापित हैं।

विदेशी बैंक - भारत में विदेशी वाणिज्यिक बैंक भी संचालित हैं। सिटी बैंक की तरह, एचएसबीसी, स्टैण्डर्ड बैंक आदि विदेशी बैंकों की शाखाऐं संचालित हैं जिन्हें विदेशों में निगमित किया गया है। विदेशी बैंकों की शाखाऐं भारत में स्थानीय बैंकों की तरह ही वित्तीय सुविधाऐं प्रदान करती हैं। भारत में शाखाओं की संख्या सीमित होने के कारण इनका उद्देश्य भारतीय वाणिज्यिक बैंकों से अलग प्रतीत होता है। ये बैंक नई प्रौद्योगिकी लाने का कार्य करते हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादों को घरेलू बाजार में परिचित कराने के साथ उनका समावेशन कराने का कार्य करते हैं ये विदेशी बैंक भारत में स्थानीय बैंकिंग उद्योग के साथ वित्तीय केन्द्रों में विदेशों में होने वाले विकास के साथ तालमेल पूँजी बाजार में पहुँच बनाने में भी सहायक हैं भारत सरकार द्वारा जनता को बैंकिंग सुविधाऐं अधिक तथा सुलभ बनाने एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत विदेशी बैंकों की संख्या बढ़ाने पर जोर दिया गया है।

बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 के द्वारा भारत में विदेशी बैंकों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। अधिनियम की धारा 11(12) के अनुसार प्रत्येक विदेशी बैंक को भारत में कार्यालय रखने के लिए चुकता पूँजी तथा आरक्षित कोष के रूप में न्यूनतम 15 लाख की राशि रिजर्व बैंक के पास रखनी होगी। विदेशी बैंक के फेल होने पर चुकता पूँजी या आरक्षित कोष पर अधिकार प्रथमतः भारतीय जमाकर्ताओं का होगा इसके साथ कुल जमा राशि का न्यूनतम 75 प्रतिशत भाग भारत में ही रखना होगा या निवेश करना होगा। प्रत्येक विदेशी बैंक को भारतीय रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेना आवश्यक है। इन बैंकों की अपनी अंकेषण रिपोर्ट सहित कारोबार का विवरण भारतीय रिजर्व बैंक को भेजना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक को किसी भी विदेशी बैंक का निरीक्षण करने का अधिकार है। अधिनियम संशोधन 1962 के अनुसार इन बैंकों को भी न्यूनतम नकद कोषानुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। विदेशी बैंक को उपार्जित शुद्ध लाभ का 20 प्रतिशत भाग भारत में ही रखा जायेगा तथा इसे हिसाब में दिखाया जायेगा। इन विदेशी बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण भी रखा जाता है। बैकों का पूंजीगत आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से विदेशी बैंकों के लिए 8 प्रतिशत पूँजी पर्याप्तता का मानदण्ड निर्धारित किया गया जिन्होंने 31 मार्च 1994 तक प्राप्त कर लिया था। माच्र 2003 के अन्त में कुल अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की

कुल आस्तियों में विदेशी बैंकों का हिस्सा 6.7 प्रतिशत था। इनके अग्रिमों के सम्बन्ध में अनर्जक परिसम्पत्तियों का अनुपात 5.2 प्रतिशत था।

12.6 वाणिज्यिक बैंकों की समस्याएँ

वाणिज्यिक बैंको के कार्य सम्पादन में आने वाली प्रमुख समस्याओं को निम्न रूप में समझा जा सकता है।

1. **जनसंख्या का बढ़ता भार-** यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं में लगातार वद्धि हो रही है फिर भी जनसंख्या के बढ़ते भार तथा क्रिया कलापों में वृद्धि के कारण बैंकिंग प्रणाली सफलता पूर्वक कार्य करने में पीछे रहती है। बैंकों में अत्यधिक भीड़ तथा ओवर लोड की समस्या बनी रहती है।
2. **ऋण वापसी की समस्या-** वाणिज्यिक बैंकों द्वारा यद्यपि ऋण स्वीकृत करने तथा उपलब्ध कराने में ग्राहक की साख तथा अन्य पक्षों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाती है फिर भी बैंकों की गैर-निष्पादित परिसम्पतियां बैंकों के सामने समस्या पैदा करती हैं इससे बैंकों की साख सृजन क्षमता तथा कार्य प्रणाली प्रतिकूल रूप् से प्रभावित होती हैं।
3. **फर्जीबाड़े की समस्या-** बैंकों के सामने धोखाधड़ी तथा फर्जीबाड़ा जैसे अनेक समस्याऐं सामने आती रहती हैं। फर्जी हस्ताक्षर से धनराशि निकालना, ए.टी.एम कार्ड का नम्बर चुराना, फर्जी दस्तावेज प्रस्तुत करना, ऋण का दुरूपयोग करना आदि कार्य बैंकिंग प्रणाली की कार्य कुशलता में बाधक हैं।
4. **अशिक्षित ग्राहकों सम्बन्धी समस्या-** ग्रामीण तथा शहरी मलिन बस्तियों में बैंक ग्राहकों की निरक्षरता तथा अशिक्षा भी बैंकों के सामने एक समस्या है। बैंकिंग योजनाओं का पूर्ण प्रचार नहीं हो पाता है। सरकारी योजनाओं के बारे में अधिक धनराशि पर हस्ताक्षर या अंगूठा निशान लगाकर कम धनराशि देना एवं बैंक नियमों की अवहेलना करना इस प्रकार की अनेक समस्याऐं हैं।
5. **कर्मचारियों के व्यवहार सम्बन्धी समस्या-** दूर-दराज ग्रामीण क्षेत्रों में सामान रूप से सरकारी कार्य करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप वह अपने ग्राहकों के साथ उचित व्यवहार नहीं करता है एवं बैंकिंग सुविधाओं। कार्यक्रमों पर अधिक जोड़ नहीं देता है जिसके आधार पर वह शहरी क्षेत्रों की ओर ट्रांसफर कराना चाहता है।

12.7 अभ्यास प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए?

1. वाणिज्यिक बैंक किसे कहते हैं?
2. वाणिज्यिक बैंक कितने प्रकार की होती हैं?
3. गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक क्या हैं?
4. खुदरा बैंकिंग का क्या अर्थ है?
5. इम्पीरियलबैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कब की गयी?
6. भारतीय स्टेट बैंक में समूह में कितने सहायक बैंक हैं?
7. बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना कब हुई?
8. भारत में कितनी गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक हैं?

(ख) नीचे दी गयी निम्न स्थानों की पूर्ति कीजिए?

1. भारतीय रिर्जव बैंक अधिनियम सन् ----- में बनाया। (1930, 1934, 1939)
2. वणिज्यिक बैंक ----- प्रकार के खाते खोलती हैं। (तीन, दो, चार)
3. बैंक के लॉकर्स में -----वस्तुऐं रखी जाती हैं। (खाघ, नमक, मूल्यवान, व्यापारिक)

4. इण्डियन ओवरसीज बैंक का राष्ट्रीयकरण ----- को हुआ। (2जून 2009, 19 जूलाई 1969, 15 अप्रैल 1980)
5. न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय----- में हुआ। (पंजाब नेशनल बैंक, इलाहाबाद बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा)

(ग) नीचे दिये गये कथनों में सत्य/असत्य बताओ?

1. 1840 में बैंक ऑफ बॉम्बे स्थापित किया गया। (सत्य/असत्य)
2. भारतीय स्टेट बैंक समूह में 12 सहायक बैंक हैं। (सत्य/असत्य)
3. भारत में 19 राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंक हैं। (सत्य/असत्य)

12.8 सारांश

सामान्य रूप से वाणिज्यक बैंकों से हमारा तात्पर्य सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की उन बैंकों से है जो मुद्रा को ब्याज दर के आधार पर उधार लेती हैं तथा जनता को व्यापारिक कार्य के लिये ऋण देती हैं तथा इस कार्य को वे एक वाणिज्यिक रूप में करती हैं। वाणिज्यिक बैंक दो प्रकार की होती हैं। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक एवं गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक। वाणिज्यिक बैंक जनता कि बचतों को जमा करती है तथा उस पर ग्रहक को ब्याज देती है। व्यापारिक कार्यों के लिए जनता को ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराती हैं। इस कार्य के साथ ये बैंकें वस्तुओं की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य, सरकारी विकास योजनाओं में वित्तीय समावेश, हामीदारी बैंकिंग, तथा आढ़क क्रियाऐं भी की जा रही हैं जिसये इनका कार्य क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हा गया है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों को विकास का इतिहास अत्यन्त पुराना है। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास 17वीं शदी में हुआ था तथा भारत में प्रथम बैंक 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' स्थापित किया गया। 1860 के बाद संयुक्त पूंजी वाले बैंकों की स्थापना हुई जैसे इलाहाबाद बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, आदि। 1945 में भारतीय बैंकिंग अधिनियम बनाया गया जिससें भारत में बैंकों के विकास को बल मिला तथा नयी शाखाओं का विस्तार हुआ। 1955 में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करके इसका नाम भारतीय स्टेट बैंक किया गया। इसके बाद बैंकों के विलयीकरण की प्रक्रिया चालू की गयी, जिससे कमजोर बैंकों को मजबूत बैंकों के साथ जोड़ा गया। अंकित ग्रामीण बैंकों को विकसित किया गया तथा बैंकों की ऋण देय क्षमताओं का विस्तार किया गया।

विकास के समय में भी वाणिज्यिक बैंक अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जिसमें समाधान के लिए अनेक प्रकार किये गये हैं।

12.9 शब्दावली

- **राष्ट्रीयकरण-** निजी क्षेत्र की या प्राइवेट क्षेत्र की बैंकों के अधिकार एवं स्वायित्व को सरकार को सौपना ही राष्ट्रीयकरण कहलाता है।
- **क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक-** उसी ग्रामीण बैंकें जिनका कार्य क्षेत्र एक विशेष ग्रामीण क्षेत्र ही होता है उसी दायरे में वे कार्य करती हैं।
- **नकद कोष अनुपात-** वाणिज्यिक बैंकों को नकद राशि का एक निश्चित अनुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा यह अनुपात घटाना या बढ़ाया जा सकता है जिससे इन बैंकों की साख सृजन की क्षमता प्रभावित होती है।
- **वैधानिक तरलता अनुपात-** वाणिज्यिक बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात अपने पास नकद रूप में रखना होता है। इसका निर्धारण भी भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।

- **लॉकर्स व्यवस्था-** इस व्यवस्था के अन्तर्गत बैंक अनले ग्राहकों के लिए विशेष अलमारी की व्यवस्था करती है जिसमें मंजूद प्रत्येक दराज में ताला लगा होता है जिने लाकर्स कहते हैं। इनकी दो चाभियां होती हैं। एक चाभी बैंक ग्राहक को देती है तथा दूसरी चाभी अपने पास सुरक्षित रख लेती है।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- गौरव दत्त व अश्वनी महाजन (2013) - भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द्र एण्ड क0 प्रा0 लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
- के.सी.शेखर एवं लक्ष्मी शेखर (2006) - Banking Theory and Practice Masjid Road, Jangpura, New Delhi।
- एच.एल.आहुजा (2010) - उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र, एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0,रामनगर, दिल्ली।
- मिश्रा एण्ड पुरी (2012) - भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- एम.पी. वैश्य (2003) - भारतीय अर्थव्यवस्था एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा0लि0 रामनगर, नई दिल्ली।
- जगदीश नारायण मिश्र (2005) - भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली।

12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाणिज्यिक बैंकों से आप क्या समझते हैं? वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों की विवेचना कीजिए?
2. भारत में स्वतंत्रता से पूर्व बैंकिंग प्रणाली के विकास पर लेख लिखिए?
3. स्वतंत्रता के बाद भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास को विस्तार से लिखिए?
4. वर्तमान में भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग प्रणाली की समस्याओं की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?

इकाई 13 : साख:- नियंत्रण एवं सृजन
(UNIT 13 : CREDIT:- CREATION AND CONTROL)

13.1 प्रस्तावना (Preface)
13.2 उद्देश्य (Objectives)
13.3 साख की परिभाषाएँ और महत्त्व (Definitions and Importance of Credit)
13.4 साख के प्रकार (Types of Credit)
13.4.1 स्रोत आधारित (Source Based)
13.4.2 प्रयोग आधारित (Use Based)
13.4.3 अवधिआधारित (Time Based)
13.4.4 धरोहर आधारित (Security Based)
13.5 साख निर्माण – कितना अर्थपूर्ण? (Credit Creation – Is it Purposeful?)
13.5.1 बैंकों द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by Banks)
13.5.2 साख निर्माण की सीमाएँ (Limitations on Credit Creation)
13.6. साख नियंत्रण की विधियाँ (Methods of Credit Control)
13.6.1 परिमाणात्मक नियंत्रण (Quantitative Control)
13.6.2 गुणात्मक नियंत्रण (Qualitative Control)
13.7 स्व-मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न (Practice questions for self assessment)
13.8 सारांश (Summary)
13.9 शब्दावली (Glossary)
13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)
13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Assisting/Useful books)
13.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answer Questions)

13.1 प्रस्तावना

साख का शाब्दिक अर्थ विश्वास अथवा भरोसा होता है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'क्रेडो'(*credo*) से हुई है। यदि अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस साख शब्द का प्रयोग ऋण के आदान प्रदान अथवा स्थगित भुगतान (deferred payments) के लिए किया जाता है। अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में इसका उपयोग तीन तरीकों से किया जा सकता है।

1. ऋण के आदान प्रदान में।
2. व्यापार में किसी व्यक्ति अथवा फर्म की साख का अनुमान लगाने के लिए।
3. लेखा अभिलेखों में जमा (debit) की प्रविष्टियाँ करने हेतु।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भविष्य में भुगतान की प्रतिज्ञा के आधार पर वर्तमान में मुद्रा अथवा मूल्यवान वस्तुओं एवं सेवाओं को प्राप्त करने की क्षमता ही साख है। व्यवहारिक दृष्टिकोण से मात्र व्यापारिक आदान प्रदान तथा बैंकों के ऋण आदि की क्रियाओं को ही साख के सौदों में सम्मिलित किया जाता है।

वाणिज्यिक बैंकों को साख निर्माण का कारखाना भी कहा जाता है। बैंक अपनी कुल जमाराशि (total cash deposits) से कई गुना अधिक राशि ऋण-स्वरुप प्रदान कर साख मुद्रा का निर्माण करते है। इस प्रकार वह अर्थव्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों को पूँजी प्रदान कर उन्हें विकसित करने में अपना योगदान देते हैं।

बैंक जमाराशि (bank deposit) ही साख का आधार हैं। यह दो प्रकार के होते हैं, प्राथमिक एवं व्युत्पन्न (derivative) जमाराशि।

किसी भी देश में साख की मुद्रा का नियमन और नियंत्रण उस देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है। भारत के सन्दर्भ में यह कार्य रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है। साख का नियंत्रण कमोबेश मुद्रा की मात्रा पर नियंत्रण से ही सम्बंधित है, क्योंकि मुद्रा का चलन साख पर ही निर्भर करता है। यही कारण है कि केन्द्रीय बैंकों की मौद्रिक नीति एवं साख नियंत्रण नीति में सामान्यतः कोई विशेष अंतर नहीं किया जाता है।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

- ✓ बैंक द्वारा साख सृजन से अर्थव्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों को पूँजी प्रदान कर इनके विकास में योगदान।
- ✓ विनिमय दरों में स्थिरता (stability of the exchange rates)
- ✓ आतंरिक मूल्यों (कीमत के स्तर) की स्थिरता (stability of the prices)
- ✓ उच्च स्तर पर आय और रोज़गार की स्थिरता (stability of income and employment at high level)
- ✓ आर्थिक विकास की गति में स्थिरता (stability of the rate of economic growth)

13.3 साख की परिभाषाएँ और महत्त्व (Definitions and Importance of Credit)

परिभाषाएँ विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं विद्वानों द्वारा साख को निम्न शब्दों में परिभाषित किया गया है।

जेवान्स (Jevons) के अनुसार, *"साख शब्द का अर्थ भुगतान को स्थगित करना है।"*

थॉमस (Thomas) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है, *" साख वह विश्वास है जिसके आधार पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ एवं सेवाएँ देता है, भले ही यह वस्तुएँ मुद्रा, सेवा तथा साख मुद्रा क्यों न हों और आशा करता है कि वह व्यक्ति इनको वापस लौटा देगा।"*

जीड (Gide) के शब्दों में, *" साख एक ऐसा विनिमय कार्य है जो एक निश्चित अवधि के उपरान्त भुगतान करने पर पूर्ण होता है"*

उपरोक्त परिभाषाओं में साख को विश्वास पर आधारित स्थगित भुगतान माना गया है किन्तु साख को व्यक्ति के उधार प्राप्त करने की योग्यता की तरह **किन्ले** (Kinley) ने साख को निम्नवत परिभाषित किया है। *"साख से हमारा अभिप्राय किसी भी व्यक्ति की उस शक्ति से होता है जिसके द्वारा वह अन्य किसी व्यक्ति को भविष्य में भुगतान की प्रतिज्ञा पर अपनी आर्थिक वस्तुएँ समर्पित करने के लिए प्रेरित करता है। अतः साख ऋणी का एक गुण अथवा शक्ति है।"*

इसे अधिकार की सीमा में लाते हुए **केन्ट** (Kent) ने कहा है, *"साख की परिभाषा वस्तुओं के तात्कालिक हस्तान्तरण के कारण, मांग पर अथवा भविष्य में किसी समय पर भुगतान पाने के अधिकार अथवा भुगतान करने के दायित्व के रूप में की जा सकती है।"*

महत्त्व - वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में साख को व्यवसायिक संगठनों की प्राण-वायु कहा जाता है। हौट्रे तथा विलिस (R.G.Hawtrey and H.P.Willis) ने साख को वर्तमान आर्थिक प्रणाली की आधारशिला कहा है।
साख के महत्त्व को साख से प्राप्त होने वाले लाभों द्वारा समझा जा सकता है जो कि इस प्रकार हैं :-

1. **पूँजी की उत्पादन शक्ति में वृद्धि** - जैसा की मिल (J.S.Mill) ने कहा है कि यद्यपि साख मुद्रा द्वारा पूँजी का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण करना होता है किन्तु यह हस्तान्तरण उन व्यक्तियों को किया जाता है जो पूँजी का उत्पादक उपयोग कर सकते हैं। ब्याज पर उद्यम कर्ताओं को पूँजी उधार मिल जाने से इसका उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से उपयोग करना संभव हो जाता है। यद्यपि साख मुद्रा का व्यापक प्रयोग होने से समस्त पूँजी की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु उत्पादन क्षमता का उपयोग होने पर अभीष्टतम उत्पादन संभव हो जाता है।
2. **सरल भुगतान** – साख के कारण बैंकों आदि संस्थाओं का जन्म हुआ है जिनके माध्यम से भुगतान करना सरल हो गया है। साख-पत्रों के प्रयोग से न केवल देशी और विदेशी भुगतान सरलता से तथा सुरक्षापूर्ण तरीके से किये जा सकते हैं वरन विनिमय के माध्यम के आकार में वृद्धि होती है जिस से आर्थिक/व्यावसायिक सुगमता की उपलब्धि होती है।
3. **उपयोग में वृद्धि** – बहुत सी व्यापारिक संस्थाएँ किश्तों पर माल उधार देती हैं। इस से उपभोक्ता साख का निर्माण होता है, वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिसके कारण उत्पादन में वृद्धि होती है तथा जीवन स्तर में सुधार के साथ समाज का उन्नयन होता है।
4. **व्यापार की उन्नति** – साख के कारण घरेलू तथा विदेश व्यापार में वृद्धि होती है क्योंकि व्यापारिक आदान-प्रदान प्रायः साख तथा बैंकों के माध्यम से ही किया जाता है।
5. **बचत का प्रोत्साहन** – जनता की बचत जो कि अन्यथा निष्क्रिय ही रह जाती उसे ब्याज के लोभ में जनता बैंक में जमा करती है। इसके परिणामस्वरूप देश में पूँजी की मात्रा में वृद्धि होती है।
6. **कीमतों में स्थिरता**- कीमतों में वृद्धि होने पर केन्द्रीय बैंक द्वारा साख संकुचन कर उन पर नियंत्रण किया जा सकता है और कीमतों के गिर जाने पर साख का प्रसार कर कीमतों को बढाया जा सकता है।
7. **मुद्रा प्रणाली में लोच** – मुद्रा की मात्रा में तात्कालिक बदलाव करना संभव नहीं है। बैंक देश में व्यापार तथा उद्योगों की मौद्रिक जरूरतों के अनुसार साख की मात्रा का विस्तार अथवा संकुचन करते हैं जिससे देश की मुद्रा प्रणाली में लचक बनी रहती है।
8. **आर्थिक विकास में सहायक** – साख के प्रयोग के द्वारा ही सरकारें अपनी आय तथा व्यय के मध्य के घाटे को पूरा करती हैं। हीनार्थ प्रबंधन (Deficit Financing) एवं सार्वजनिक ऋणों द्वारा सरकार विकास के व्यय का एक बड़ा भाग प्राप्त करती है।

9. **आर्थिक संकट से मुक्ति** – युद्ध और अन्य बड़ी आपदाओं से उत्पन्न स्थिति से उबरने के लिए सरकार ऋण द्वारा अपने साधनों में वृद्धि कर सकती है।
10. **अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण** – केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों को दी जानी वाली साख की मात्र तथा दिशा में नियमित तरीके से परिवर्तन करके इसे आर्थिक विकास की ज़रूरतों के अनुकूल कर सकता है।

13.4 साख के प्रकार (Types of Credit)

साख अनेक प्रकार के होते है। इसके विभिन्न रूपों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है।

13.4.1 स्रोत आधारित (Source Based)

साख की प्राप्ति के स्रोत (अथवा ऋणदाता) के आधार पर साख तीन प्रकार की होती है।

अ) व्यक्तिगत अथवा ग़ैर संस्थागत साख- जिसे उन व्यतियों से प्राप्त किया जाता है जो ऋणों के लेन देन का वयवसाय करतें है परन्तु साथ ही कुछ अन्य वयवसाय भी करतें है।

ब) संथागत साख- जिसे बैंकों तथा अन्य ऐसी वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त किया जाता है जिनका व्यवसाय ऋणों का लेन देन करना ही है ।

स) व्यापारिक साख – जो व्यापारियों द्वारा वस्तुओं की उधार बिक्री के रूप में प्राप्त की जाती है।

13.4.2 प्रयोग आधारित (Use Based)

साख का प्रयोग उपभोक्ता, व्यवसाय, उद्योग तथा सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं द्वारा अपनी उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए प्राप्त किये गए ऋण उपभोक्ता साख कहलातें है। ऐसे ऋण जिनका उपयोग उत्पादन के लिए किया जाता है, उत्पादन साख कहलाते है।

विभिन्न व्यवसायियों द्वारा लिए गए ऋण व्यावसायिक साख कहे जाते है। औद्योगिक साख का प्रयोग उद्योगपतियों द्वारा तथा कृषी साख का प्रयोग किसानों द्वारा उत्पादन में वृद्धि के लिये किया जाता है। उत्पादन के लिए प्रयोग किए गए ऋणों से लाभ यह होता है कि इनका भुगतान करने में ऋणियों को कोई परेशानी नहीं होती क्यूंकि उनकी आय तथा भुगतान करने की क्षमता में साख के प्रयोग से वृद्धि होती है। सार्वजानिक साख के रूप में सरकार द्वारा भी जनता तथा बैंकों से ऋण लिए जाते है जिसका प्रयोग सरकार द्वारा अपने आय तथा व्यय के घाटे की पूर्ति के लिए किया जाता है।

13.4.3 अवधिआधारित (Time Based)

यदि साख थोड़े समय के लिये दी जाए तो इसे अल्पकालीन साख कहते है।इसकी अवधि प्राय : एक वर्ष की होती है किसी भी समय मांग पर देय होने पर इसे मांग साख (Demand Credit) कहते है। 1 से 5 वर्ष तक की अवधि के लिए माध्यमकालीन साख तथा इससे अधिक अवधि के ऋण दीर्घकालीन साख कहलाते है ।

13.4.4 धरोहर आधारित (Security Based)

धरोहर अथवा जमानत (Security) के अनुसार जिन ऋणों के पीछे यथेष्ट मूल्य की संपत्ति जमानत के रूप में रखी रहती है, उन्हें पूर्ण सुरक्षित साख (Fully Secured Credit) कहते है। ऋणों के पीछे कोई जमानत न रखकर केवल ऋणी की व्यक्तिगत जमानत पर दी गयी साख असुरक्षित साख (Unsecured Credit) कहलाती है।इन दोनों प्रकार के साख के बीच एक प्रकार की साख ऐसी भी होती है जिसके पीछे साख के मूल्य के कम की संपत्ति धरोहर के रूप में रखी जाति है, इसे अंशतः सुरक्षित साख (Partially Secured Credit) कहते है।

13.5 साख निर्माण – कितना अर्थपूर्ण? (Credit Creation – Is it Purposeful?)

बैंक केवल मुद्रा का लेन देन ही नहीं करते बल्कि साख का व्यवहार भी करते हैं। यही कारण है कि बैंक को साख का सृजनकर्ता भी कहा जाता है। बैंक देश की बिखरी और सुप्त संपत्ति को इकट्ठा करके देश में उत्पादन के कार्यों में लगाते हैं जिससे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है और उत्पादन की प्रगति में सहायता मिलती है। अग्र लिखित दो शीर्षकों में हम यह ज्ञात कर पाएंगे कि साख निर्माण कितना अर्थपूर्ण है।

13.5.1 बैंकों द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by Banks)

वर्तमान अर्थव्यवस्था में साख के महत्व की व्याख्या करने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि हम देखें कि साख का निर्माण किस प्रकार होता है तथा उसकी सीमाएँ क्या हैं?

सेयर्स के अनुसार, 'बैंक केवल मुद्रा जुटाने वाली संस्था नहीं है, अपितु एक महत्वपूर्ण अर्थ में वे मुद्रा के निर्माता भी है।' अधिकांश मुद्राशास्त्री – हार्टले विदर्स , केन्स , सेयर्स , हाम आदि यह स्वीकार करते है कि बैंक का महतवपूर्ण कार्य साख का निर्माण करना है।

- **केन्द्रीय बैंक द्वारा साख निर्माण-** किसी भी देश में विधिग्राह्य मुद्रा का निर्माण वहाँ की सरकार तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। एक केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा निर्गमन करने पर मुद्रा के बराबर मूल्य का धातुकोश रखा जाता था किन्तु अब यह कोष शत-प्रतिशत नहीं रखा जाता। आनुपातिक-धातु-आधार रख कर बाकी का मुद्रा निर्गमन प्रतिभूति के आधार पर कर दिया जाता है। अतः वह मुद्रा, जो कि धातु कोष आधार-रहित है, केन्द्रीय बैंक की साख के आधार पर ही प्रचलन में रहती है। यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्गमित नोट साख पत्र ही हैं परन्तु इनके विधिग्राह्य होने के कारण इन्हें पूर्णतः साख पत्र नहीं कहा जा सकता।
- **वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख निर्माण-** बैंक अपनी कुल जमाराशि (Cash Deposits) से कई गुना अधिक राशि उधार देकर साख मुद्रा का निर्माण करते हैं।

केन्स (Keynes) तथा सी.ए.फिलिप्स (C A Phillips) के विचारों के आधार पर प्रो।हाम (Halm) ने दो प्रकार की जमाराशियों का उल्लेख किया है – प्रारम्भिक जमा (Primary Deposits) तथा व्युत्पन्न जमा (Derivative Deposits)। यहाँ पर प्रारम्भिक जमा का तात्पर्य वह जमा राशियाँ हैं जिन्हें जमाकर्ता नकदी या वास्तविक मुद्रा के रूप में बैंक में जमा करते हैं। यह राशियाँ नकद जमा (Cash Deposits) या निष्क्रिय जमा भी कहलाती हैं। व्युत्पन्न जमा वह राशि है जो बैंक द्वारा ऋण देने के उद्देश्य से उधार लेने वाले के नकद साख खाते (Cash Credit Account) में लिख दी जाती है। यह साख जमा (Credit Deposit) या गौण जमा (Secondary Deposit) भी कहलाती है। बैंक नकद जमा के आधार पर ही साख जमा का निर्माण करते हैं। नकद जमा का एक निश्चित हिस्सा कोष में रखकर बाकी से साख जमा का निर्माण होता है। **हाम** के अनुसार, *"व्युत्पन्न जमा का निर्माण ही साख का सृजन है"*

एक बैंक द्वारा साख निर्माण- बैंक अपने अनुभव से यह जानता है कि उसके पास जमा किये हुई पैसे को जमाकर्ता, हालाँकि वो ले सकता है, एक साथ वापस नहीं लेता। माना कि जमाकर्ता अपने इस बैंक में 100 रूपये जमा करता है। बैंक इस जमा राशि का निर्धारित प्रतिशत नकद के रूप में अपने पास रखकर शेष रकम किसी को ऋण के रूप में दे देता है ।

उदाहरण स्वरुप मान कर चलते हैं कि बैंक ने A व्यक्ति की जमा राशि का 20 प्रतिशत भाग (20 रुपये) नगद रख लिये तथा शेष 80 रुपये व्यक्ति B को ऋण के रूप में दे दिये । ऋण लेने वाला व्यक्ति

सम्पूर्ण ऋण का आहरण एक साथ नहीं करता वरन यह ऋण राशि उसके ऋण खाते में लिख मात्र दी जाती है। इस प्रकार बैंक के जमा धन में 80 रूपये की बढ़ोत्तरी हो जाती है। यह राशि व्युत्पन्न जमा है।

अब बैंक यह मान कर कि B व्यक्ति को दिया गया 80 रुपये का जो ऋण है B एक साथ न निकालकर अपनी आवश्यकता के अनुसार समसमय पर नि-कालेगा, बैंक उसके 80 रुपये का 20 प्रतिशत (16 रुपये) नकद रखकर 64 रुपये व्यक्ति C को ऋण रूप में दे देगा।

बैंक का यह क्रम एक निश्चित सीमा तक चलता ही जायेगा और बैंक 100 रुपये के प्रारम्भिक जमा के आधार पर उसका कई गुणा अधिक ऋण स्वरुप प्रदान करने में समर्थ हो जायेगा।

अनेक बैंकों द्वारा साख निर्माण

यदि उपरोक्त उदाहरण में एक के स्थान पर विभिन्न बैंकों को रख कर देखा जाये और ऋण विभिन्न व्यक्तियों को इन बैंकों से प्राप्त हो तो उक्त उदाहरण का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है -

माना किA बैंक में किसी व्यक्ति की 1000 रुपये की राशि जमा हुई है। वह चाहे तो अपने खाते से यह राशि कभी भी निकाल सकता है परन्तु बैंक अपने अनुभव से यह जानता है कि जमाकर्ता पूरी जमा राशि एक साथ एक ही समय में वापस नहीं माँगेगा बल्कि वह सम्पूर्ण जमाराशि का थोड़ा हिस्सा ही वापस लेगा।

अब बैंक इस जमाराशि का निर्धारित प्रतिशत नकद रूप में रखकर बाकी रकम अन्य व्यक्तियों को ऋण के रूप प्रदान करेगा। उदाहरण के लिए यह मान कर चलते हैं कि बैंक जमाकर्ता की 1000 रुपये की जमा राशि में से 200 रुपये नकद रखकर 800 रुपये का ऋण दूसरे व्यक्ति को दे देता है।

दूसरा व्यक्ति इस राशि को अन्य बैंक B में जमा कर देता है। बैंक B 160 रुपये रखकर 640 रुपये किसी तीसरे व्यक्ति को ऋण स्वरुप दे देता है। तीसरा व्यक्ति यह 640 रुपये एक अन्य बैंक C में जमा कर देता है। बैंक C भी इस में से 20 प्रतिशत राशि को जमा रखकर शेष राशि किसी चौथे व्यक्ति को ऋण स्वरुप दे देता है।

बैंक स.	नयी जमा राशि	जमा पर रखा गया कोष (20 %)	व्युत्पन्न जमा (Derivative Deposit) अथवा ऋण
बैंक A	1000.00	200.00	800.00
बैंक B	800.00	160.00	640.00
बैंक C	640.00	128.00	512.00
बैंक D	512.00	102.40	409.60
बैंक E	409.60	81.91	327.68
बैंक F	327.68	65.53	262.15
बैंक G	262.15	52.43	209.27
बैंक H	209.72	41.64	167.78
A से H का योग	4161.15	822.22	3328.93
अन्य बैंक	838.85	167.78	671.07
पूर्ण योग	5000.00	1000.00	4000.00

विभिन्न बैंकों द्वारा साख निर्माण की प्रक्रिया

जैसा कि दी गयी तालिका से स्पष्ट है, बैंकिंग प्रणाली के द्वारा कुल 4000 रूपये के व्युत्पन्न जमा (ऋण) का सृजन होगा एवं 5000 रुपये के कुल जमा (सभी बैंकों का योग) प्राप्त होंगे। विचारणीय बात यह है कि यह प्रक्रिया गुणक आकार में बढ़ती है और इसकी पुनरावृत्ति तब तक होती रहती है जब तक सभी बैंकों के द्वारा निर्मित व्युत्पन्न जमाराशियों का योग प्रथम बैंक द्वारा निर्मित प्रारम्भिक जमा मात्रा का गुणक नहीं हो जाती। व्युत्पन्न जमा राशियों के योग को प्रारम्भिक जमा कोष की मात्रा से विभाजित करके साख गुणक ज्ञात हो जाता है।

साख गुणक = व्युत्पन्न जमा राशि का योग / प्रारम्भिक जमा कोष की राशि

5 = 4000 / 800

नकद कोष अनुपात परिवर्तन द्वारा साख निर्माण (Credit creation by changing the Cash Reserve Ratio)- नकद कोष के प्रतिशत में कमी कर के बैंक की साख निर्माण क्षमता बढ़ जाती है। उपरोक्त उदाहरण में 20 प्रतिशत न रखकर यदि बैंक मात्र 10 प्रतिशत नकद राशि रखने लगे तो बैंक की साख निर्माण क्षमता में वृद्धि हो जायेगी क्योंकि 90% राशि को व्युत्पन्न जमा के रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

अधिविकर्ष (Over Draft)- इस के तहत बैंक अपने ग्राहक को जमा राशि से अधिक राशि निकालने की अनुमति दे देता है। इसके परिणामस्वरूप जितनी राशि अधिविकर्ष के रूप में निकाली जाती है उतनी ही मात्रा में साख का निर्माण हो जाता है। इसका प्रयोग बहुत सीमित होता है क्योंकि बैंक द्वारा अधिविकर्ष की सुविधा केवल प्रतिष्ठित ग्राहकों को ही दी जाती है।

13.5.2 साख निर्माण की सीमाएँ (Limitations on Credit Creation)

बैंक एक सीमा तक ही साख का निर्माण कर सकने में सक्षम होते हैं। प्रो.बेन्हैम के अनुसार साख निर्माण की तीन सीमाएँ हैं।

(i) विधिग्राह्य मुद्रा की मात्रा।

(ii) मुद्रा की तरलता

(iii) मुद्रा दायित्व और नकद कोष का अनुपात

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार साख निर्माण को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं :

1. **मुद्रा की मात्रा** (Volume of Currency in Circulation): बैंकों की साख निर्माण शक्ति विधिग्राह्य मुद्रा की कुल मात्रा पर आधारित होती है। विधिग्राह्य मुद्राओं का जितना अधिक निर्गमन और प्रचलन होता है बैंकों की साख निर्माण की शक्ति उतनी ही अधिक होती है। विधिग्राह्य मुद्रा की मात्रा कम होने पर साख का निर्माण भी कम होता है।
2. **मुद्रा स्फीति एवं संकुचन** (Inflation and Deflation): बैंकों के पास मुद्रा स्फीति की स्थिति में विधिग्राह्य मुद्रा अधिक जमा होती है जिससे बैंकों की साख निर्माण शक्ति भी अधिक हो जाती है। इसके उलट, मुद्रा संकुचन की स्थिति में नकद कोष कम हो जाता है जिससे बैंकों की साख निर्माण की शक्ति भी कम हो जाती है।
3. **नकद मुद्रा रखने की प्रवृत्ति** (Cash keeping tendency): जिस देश में जनता की प्रवृति कम से कम नकद अपने पास रखने की होती है, उस देश में बैंक में नकद जमा अधिक हो जाता है। इससे बैंक की साख निर्माण की शक्ति बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि जनता अपने पास अधिक से

अधिक नकद मुद्रा रखती है तो वहाँ बैंक जमा कम हो जाताहै। इससे बैंक की साख निर्माण शक्ति कम हो जाती है।

4. **नकद कोष का अनुपात** (Cash Reserve Ratio): बैंकों को अपने पास कुल जमा का एक निश्चित भाग नकद कोष के रूप में रखने की अनिवार्यता होती है। ऐसे ही वह अपने जमा कर्ताओं द्वारा की जाने वाली नकद मुद्रा की माँग को पूरा कर सकते हैं। बैंक के पास कम नकद कोष रखने की स्थिति में उनकी साख निर्माण की क्षमता अधिक हो जाती है।
   यदि बैंक को अपने पास अधिक नकद मुद्रा रखनी पड़े तो उनकी साख निर्माण की क्षमता कम हो जाएगी। उदाहरण स्वरुप, यदि बैंक अपने पास मात्र 10 प्रतिशत ही नकद कोष रखता है तो वह 90 प्रतिशत धन साख के रूप में प्रचलन में ला सकता है । ऐसी स्थिति में बैंक की साख निर्माण क्षमता बढ़ जाएगी। इसके अपेक्षा, यदि बैंक में 20 प्रतिशत नगद धन रखने की अनिवार्यता हो तो साख निर्माण क्षमता घटकर 80 प्रतिशत ही शेष रह जाएगी।
5. **राष्ट्रीय साख नीति** (National Credit Policy): किसी भी देश में केन्द्रीय बैंक साख मुद्रा का नियंत्रण एवं नियमन करता है। जब केन्द्रीय बैंक या सरकार सस्ती मुद्रा नीति अपनाए तो साख निर्माण अधिक होता है। इसके उलट परिस्थिति में केन्द्रीय बैंक यदि महँगी मुद्रा नीति अपनाए तो साख को नियंत्रण में रखा जा सकता है।
   महँगी मुद्रा नीति के अन्तर्गत बैंक दर, मुक्त बाजार की क्रियाओं, न्यूनतम बैंक आरक्षित अनुपात आदि के माध्यम से केन्द्रीय बैंक द्वारा साख संकुचन किया जाता है। अतः केन्द्रीय बैंक की साख नियंत्रण नीति से बैंकों की साख निर्माण क्षमता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित होती है।
6. **जमानतों की श्रेष्ठता** (Quality of Securities): जमानत के आधार पर ही कोई भी बैंक ऋण देता है। यदि बैंक को अधिक श्रेष्ठ जमानत प्राप्त होगी वह अधिक साख का निर्माण कर सकेगा।
   प्रो. सेयर्स के अनुसार – *'बैंक अपनी मुद्रायें तत्काल किसी को भी नहीं देते है बल्कि केवल उन्हीं को देते है जो बैंक को इस प्रकार की सम्पत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं जिन्हें बैंक आकर्षक समझता है।'*
   प्रो. क्राउथर के अनुसार – *'वस्तुतः बैंक उसी समय ऋण देता है जबकि उसे अच्छी प्रतिभूतियाँ या सम्पत्तियाँ जमानत के रूप में मिलती हैं।'*
   इसके विपरीत उचित व श्रेष्ठ जमानत प्राप्त न होने पर बैंक कम साख का निर्माण कर पाता है।
7. **केन्द्रीय बैंक में बैंकों के सुरक्षित कोष** (Cash Reserves of Banks with the Central Bank): केन्द्रीय बैंक प्रत्येक देश में सूचीबद्ध बैंकों की माँग जमा एवं समय जमा तथा चालू और निश्चितकालीन जमाओं का एक निश्चित भाग सुरक्षित कोष के रूप में अपने पास जमा रखता है। यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा अधिक मात्रा में सुरक्षित कोष अपने पास जमा रखा जाता है तो व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा सुरक्षित कोष अधिक मात्रा में अपने पास रखने से बैंकों की मौद्रिक तरलता में कमी हो जाती है।
8. **प्राथमिक जमा** (Primary Deposits): प्रो. कीन्स का यह मत है कि बैंक की साख निर्माण शक्ति उसकी प्रारम्भिक जमाओं की मात्रा पर आधारित है । यदि प्रारम्भिक जमा अधिक हैं तो बैंकों की साख निर्माण क्षमता भी अधिक होगी। प्रारम्भिक जमा कम होने की स्थिति में बैंकों की साख निर्माण की क्षमता भी कम हो जाती है।
9. **आर्थिक विकास** (Economic Growth): यदि कोई देश व्यापार, उद्योग, कृषि, खनिज आदि की दृष्टि से उन्नत है तो वहाँ साख निर्माण की प्रवृत्ति उतनी ही शक्तिशाली होती है। आर्थिक दृष्टि से

पिछड़े हुए देश में साख की कम आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वहाँ साख निर्माण भी कम होता है। इसी कारण के चलते विकसित देशों में व्यापारिक बैंक अधिक मात्रा में साख निर्माण करने में सफल रहते हैं।

10. **अंतर्राष्ट्रीय ऋण** (International Debts): जब कोई देश विदेशों या अंतर्राष्ट्रीय बैंकों से ऋण लेकर उस का उपयोग उद्योग, कृषि, व्यापार आदि के विकास के लिए करता है तो साख की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है । इसकी उलट दशा में साख का निर्माण कम होता है ।

13.6. साख नियंत्रण की विधियाँ (Methods of Credit Control)

साख नियंत्रण को मौद्रिक प्रबंधन (Monetary Management) भी कहा जाता है। इस कार्य को देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। आर्थिक स्थिति के आधार पर ही केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण हेतु भिन्न-भिन्न विधियाँ अपनाता है जो कि विशेषतः दो तरह की होती हैं।

i) **परिमाणात्मक नियंत्रण** (Quantitative Control) एवं ii) **गुणात्मक नियंत्रण** (Qualitative Control)

13.6.1 परिमाणात्मक नियंत्रण (Quantitative Control)

इसका सम्बन्ध साख की मात्रा तथा उसकी कीमत (ब्याज दर) पर आधारित है। यह निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. **बैंक दर नीति** (Bank Rate Policy) – यह वह ब्याज दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सूचीबद्ध बैंकों के प्रथम श्रेणी के बिलों की पुनर्कटौती करता है अथवा स्वीकार्य की जा सकने वाली प्रतिभूतियों पर ऋण प्रदान करता है। यदि केन्द्रीय बैंक देश के बैंकों को ऊँची ब्याज दर पर ऋण देता है तो निश्चित ही यह बैंक भी अपने ग्राहकों को ऊँची ब्याज दर पर ही उधार उपलब्ध करा पाएँगे। यह दर बढ़ जाने पर ऋण की माँग घटती है और साख का संकुचन होता है। इसके उलट ब्याज दर घटने पर ऋण की मांग बढ़ती है और साख में भी वृद्धि होती है।

   अ) बैंक दर नीति का रोज़गार पर प्रभाव – बैंक दर में वृद्धि होने के कारण बचतों में तो वृद्धि होती है किन्तु ऋण की मांग कम हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप विनियोग गिर जाता है, उत्पादन में कमी होती है तथा रोज़गार उपलब्धता में भी कमी आ जाती है। इसके फलस्वरूप लोगों की मौद्रिक आय में कमी होती है तथा वस्तुओं की मांग कम होने के कारण उनकी कीमतें गिरने लगती हैं। संक्षेप में, मुद्रा संकुचन का क्रम आरम्भ हो जाता है। बैंक दर कम होने पर ठीक इसके उलट परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं।

   ब) विदेशी पूँजी पर प्रभाव - बैंक दर बढ़ने से ब्याज की बाज़ार दर में भी वृद्धि होती है जिस से अल्पकालीन विदेशी पूँजी का प्रवाह बढ़ जाता है। ऊंची ब्याज दर से आकर्षित होकर विदेशी पूँजी देश में आने लगती है और देश के लोग अपने विदेशी ऋणों को देश में लाने लगते हैं। विदेशों से धनराशी आयातित होने पर भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार होता है। बैंक दर कम होने की दशा से अल्पकालीन पूँजी देश के बाहर जाने लगती है।

   स) विनिमय दर पर प्रभाव – विदेशी पूँजी के देश में अधिक मात्रा में आने पर देश का भुगतान संतुलन अनुकूल होने लगता है और विनिमय दर भी अनुकूल हो जाती है। बैंक दर के घटने पर ठीक इसकी विपरीत परिथितियाँ जन्म लेती है।

द) व्यावसायिक गतिविधियों पर प्रभाव – बैंक दर में होने वाले परिवर्तनों को अर्थव्यवस्था के सूचक चिन्ह के रूप में देखा जाता है। व्यवसायिक अनुमान बैंक दरों में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

मुद्रास्फीति के दबाव को नियंत्रित करना, विनियोग के प्रसार का नियमन तथा अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में संतुलन बनाना इत्यादि गत वर्षों में बैंक दर में वृद्धि के मुख्य कारण बने।

बैंक नीति के सिद्धान्त - हौट्रे के अनुसार बैंक दर में परिवर्तन ब्याज की अल्पकालीन दरों तथा कार्यशील पूँजी के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालते हैं। जब कि कीन्स के अनुसार बैंक दर में परिवर्तनों का प्रभाव ब्याज की दीर्घकालीन दरों तथा स्थिर पूँजी के माध्यम से पड़ता है। इन दोनों विचारधाराओं को विद्वानों ने एक-दुसरे का पूरक माना है।

2. **मुक्त बाज़ार की क्रियाएँ** (Open Market Operations) – इसके अंतर्गत बैंक द्वारा मुद्रा बाज़ार में अनेक प्रकार के बिलो अथवा प्रतिभूतियो का क्रय विक्रय होता है।किन्तु सूक्ष्म द्रष्टि से देखा जाये तो इसमें केवल अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय ही केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। साख संकुचन करने के उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियों का विक्रय करने लगता है।वाणिज्यिक बैंकों एवं जनता द्वारा खरीदे जाने पर चलन की मात्रा तथा बैंकों के नकद कोष में कमी होती है। इस से बैंकों के साख निर्माण की क्षमता कम हो जाती है। जब केन्द्रीय बैंक का उद्देश्य साख का प्रसार करना होता है तो वह प्रतिभूतियों को खरीदने लगता है जिस से कि बैंकों के नकद कोष में वृद्धि होती है। इस खुले बाज़ार की नीति का साख निर्माण पर बैंक दर की तुलना में तुरन्त और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।
3. **बैंकों के नकद कोष अनुपात में परिवर्तन** (Variations in Cash Reserve Ratio) – वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केन्द्रीय बैंकों के पास रखे जाने वाले नकद कोष के प्रतिशत अथवा अनुपात में वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि उनके पास नकदी की मात्रा कम रह जाती है जिस से कि उनकी साख निर्माण की क्षमता कम हो जाती है। इसके उलट जब केन्द्रीय बैंकों के पास रखे जाने वाले कोष को कम किया जाता है तो वाणिज्यिक बैंकों के पास नकद की मात्रा बढ़ जाती है जिससे कि उनकी साख निर्माण क्षमता भी बढ़ जाती है। वर्तमान में भारत में नकद कोष अनुपात तीन प्रतिशत है। उदाहरण – यदि इस नकद कोष अनुपात को केन्द्रीय बैंक द्वारा 9 प्रतिशत कर दिया जाए तो सभी बैंकों को अपने नकद कोष का दो गुना और कोष केन्द्रीय बैंक के पास जमा कराना होगा। उनके पास नकदी की कमी हो जाएगी जिससे कि उनकी साख निर्माण क्षमता घाट जाएगी। यह साख नियंत्रण की अन्य विधियों की तुलना में सरल पद्धति है क्योंकि यह केन्द्रीय बैंक के मात्र एक आदेश से ही लागू हो जाती है। इसका प्रत्येक बैंक के नकद कोष पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है जबकि खुले बाज़ार की क्रियाओं द्वारा उन्हीं बैंकों पर असर होता है जो केन्द्रीय बैंक द्वारा विक्रय की जा रही प्रतिभूतियों को खरीदते अथवा उसे वापस इन प्रतिभूतियों को बेचते हैं। खुले बाज़ार की क्रियाओं के अंतर्गत बेचे जाने वाली प्रतिभूतियां यदि अधिक ब्याज दर पर हों तो पुरानी प्रतिभूतियों का मूल्य गिर जाता है अथवा इसका ठीक उलट होता है किन्तु नकद अनुपात विधि का इनके मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।इस प्रणाली का विदेशी पूँजी के प्रवाह पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।यह प्रणाली बैंकों के नकद कोष के अतिरिक्त किसी तत्व को प्रभावित नहीं करती अतः इसे अत्यंत सरल विधि माना जाता है।
4. **गौण कोष की मांग** (Secondary Reserve Requirements)- कुछ केन्द्रीय बैंकों को वाणिज्यिक बैंकों से नकद कोष अनुपात के अतिरिक्त भी गौण अथवा सहायक कोष (Secondary Reserve) की

मांग करने का अधिकार होता है। वाणिज्यिक बैंकों के लिए अनिवार्य होता है कि वह एक निश्चित मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियां खरीदें अथवा अन्य तरल आदेयों (Liquid Assets) में लगाएं। इस विधि का उपयोग भी साख निर्माण क्षमता को नियंत्रित करने हेतु किया जाता है। **डी कॉक** के अनुसार, *'युद्ध, सशस्त्रीकरण अथवा अन्य असामान्य स्थितियों से उत्पन्न असाधारण स्फीतिक दबावों को रोकने के लिए निश्चित मौद्रिक नीति के रूप में काफी महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है।'*

13.6.2 गुणात्मक नियंत्रण (Qualitative Control)

1) **प्रवृत्य साख नियंत्रण** (Selective Credit Controls) – परिमाणात्मक नियंत्रण के विपरीत यह विधि साख के प्रयोग को नियंत्रित करती है।यह समूची अर्थव्यवस्था को न करके मात्र उसके कुछ विशेष क्षेत्रों की वित्तीय एवं आर्थिक गतिविधियों को ही प्रभावित करती है।
   अ) ऋण की सीमा में परिवर्तन – कभी-कभी भविष्य में मुनाफ़ा कमाने के लालच में व्यापारियों द्वारा किसी वस्तु विशेष का स्टॉक बढ़ा लिया जाता है। इस स्टॉक को बढाने हेतु वक बैंक से ऋण लेते हैं। स्टॉक की गयी वस्तु का बाज़ार में कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए धरोहर के रूप में रखे गए माल की कीमत तथा ऋण की राशि में अंतर की सीमाओं (margin requirements) को बढ़ा दिया जाता है। इस कारण उतने ही माल पर अब जितनी अंतर की सीमा बढ़ाई गयी है उतना कम ऋण प्राप्त होता है।
   ब) ब्याज अथवा कटौती दर में भिन्नता – जिन क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया जाना है उन क्षेत्रों के बिलों की कटौती दर कम निर्धारित की जाती है एवं जिन क्षेत्रों को हतोत्साहित करना हो उनके बिलों की कटौती दर बढ़ा दी जाती है।
   स) ऋणों की प्राप्ति पर नियंत्रण – कुछ चुने हुए क्षेत्रों में यदि साख को सीमित करना होता है तो उन क्षेत्रों को ऋण दिए जाने पर सीमा प्रतिबन्ध लगा दिए जाते हैं। इन सीमित ऋणों को प्राप्त करने हेतु भी केन्द्रीय बैंकों की पूर्वानुमति आवश्यक होती है।
2) **साख की राशनिंग** - केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों की साख को तय कर देता है।वह ये सुनिश्चित कर देता है कि किस बैंक को कितनी साख क्षमता दी जाएगी। यह निम्न तरीकों से किया जाता है।
   अ) किसी बैंक की पुनः भुनाने (Rediscounting) की सुविधा को समाप्त कर के।
   ब) सभी बैंकों के लिए इस सुविधा को सीमित कर के अथवा उनके लिए साख का कोटा (quota) निश्चित कर के।
   स) विभिन्न बैंकों द्वारा अलग-अलग उद्योगों या व्यवसायों को दिए जाने वाले ऋण की सीमा या कोटा निश्चित कर के।
3) **प्रत्यक्ष कार्यवाही** – केन्द्रीय बैंक के आदेशों का पालन न करने वाले बैंकों के विरुद्ध केन्द्रीय बैंक सीधी या प्रत्यक्ष कार्यवाही करता है।वह उनकी पुनः कटौती की सुविधा को बंद कर देता है अथवा उसकी दर को बढ़ा देता है।
4) **प्रचार** – केन्द्रीय बैंक समय समय पर मुद्रा बाज़ार की स्थिति तथा बैंकिंग व्यवस्था की समस्याओं, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार तथा आयात-निर्यात आदि के सम्बन्ध में आंकड़े व विवरण प्राकशित करता है जिससे अर्थव्यवस्था के सभी गणक सचेत व जागरूक रहकर व्यापारिक अनुमान की गणना करने में सक्षम होते हैं।

13.7 स्व-मूल्यांकन हेतु अभ्यास एवं बोध प्रश्न (Practice questions for self assessment)

अ) लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. स्रोत के अनुसार साख कितने प्रकार की होती है?
2. प्रतिज्ञा पत्र को संक्षेप में समझाइए।
3. साख के नियंत्रण में खुले बाज़ार की क्रियाओं का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. बैंक दर नीति में परिवर्तन से आर्थिक परिदृश्य में क्या परिवर्तन आते है?

ब) सत्य/ असत्य बताईए -

1. यह कहा जा सकता है कि भविष्य में भुगतान की प्रतिज्ञा के आधार पर वर्तमान में मुद्रा अथवा मूल्यवान वस्तुओं एवं सेवाओं को प्राप्त करने की क्षमता ही साख है।
2. किसी भी देश में साख की मुद्रा का नियमन और नियंत्रण उस देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है।
3. साख के कारण बैंकों आदि संस्थाओं का जन्म हुआ है जिनके माध्यम से भुगतान करना कठिन हो गया है।
4. साख कि प्राप्ति के स्रोत (अथवा ऋणदाता) के आधार पर साख चार प्रकार की होती है।
5. विनिमय बिल मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। दर्शनी बिल (Sight or Demand Bill of Exchange) एवं मुद्दती बिल (Time or Usance Bill of Exchange)।

एक बैंक द्वारा साख निर्माण एवं एकाधिक बैंकों द्वारा साख निर्माण में साख गुणक में अंतर होता है।

स) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये -

1. वाणिज्यिक बैंकों को..................का कारखाना भी कहा जाता है।
2. भारत में साख निर्माण का कार्य ....द्वारा किया जाता है।
3. चैक बैंक में जमा करने वाले व्यक्ति,को..................कहते हैं,
4. बैंक जमाराशि ही साख का आधार हैं। यह दो प्रकार के होते हैं, प्राथमिक एवं..................
5. कीमतों में वृद्धि होने पर केन्द्रीय बैंक द्वारा..................कर उनपर नियंत्रण किया जा सकता है।
6. साख शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द..................से हुई है।

13.8 सारांश (Summary)

इस पाठ में हमने जाना कि साख का किसी देश की अर्थव्यवस्था में क्या महत्त्व है। हमने यह भी जाना कि किस प्रकार बैंक साख का निर्माण करते हैं और किस प्रकार साख के निर्माण से अर्थव्यवस्था को गति मिलती है। इस पाठ में साख के विभिन्न प्रकारों के विषय में भी हमें जानकारी प्राप्त हुई। साख अपने तरीके से अर्थव्यस्था के विकास में किस प्रकार योगदान करते हैं। हमने यह जाना कि साख निर्माण की अपनी क्या सीमाएँ होती हैं। साख अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान करती है किन्तु इस विकास को संतुलित करने के लिए साख निर्माण पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। हमने यह जाना कि साख निर्माण पर किस तरह नियंत्रण किया जाता है और किन विधियों से किया जाता है।

13.9 शब्दावली (Glossary)

- **व्युत्पन्न जमा** – जब ऋणदाता बैंक ऋण लेने वाले के नकद साख खाते में कुछ रकम लिख देता है तो यह रकम व्युत्पन्न जमा कहलाती है।
- **साख पत्र** – वह पत्र जिनके आधार पर ऋण का आदान-प्रदान होता है।
- **बेचान** – चेक का हस्तान्तरण करने हेतु उस की पीठ पर हस्ताक्षर सहित जो शब्द लिखे जाते हैं उसे चेक का बेचान कहते हैं।

- **हस्तान्तरण** – आदान-प्रदान की क्रिया को हस्तान्तरण कहा जाता है।
- **जमानत** – ऋण को सुरक्षित बनाने के लिए गिरवी दी गयी वस्तु।
- **संकुचन** – किसी वस्तु के घटने अथवा कम होने की क्रिया को संकुचन कहा जाता है।

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

ब) सत्य/ असत्य बताईए -

1) सत्य	2) सत्य	3)असत्य
4) असत्य	5) सत्य	6) असत्य

स) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये -

1) साख निर्माण	2) रिज़र्व बैंक	3) आहार्ता
4) व्युत्पन्न जमाराशि	5) साख संकुचन	6) 'क्रेडो'(*credo*)

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- भारतीय बैंकिंग प्रणाली; डा. सतीश कुमार साहा. SBPD Publications.
- Bankers' Handbook on Credit Management. Indian Institute of Banking and Finace. Published by Taxmann 2018.
- Money, Banking, International Trade and Public Finance. M L Seth, Lakshmi Narian Agarwal 2017.
- Money, Banking & Public Finance, Dr. V.C.Sinha,Dr.Pushpa Sinha, SBPD Publications,2015
- मुद्रा एवं बैंकिंग, टी टी सेठी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशक (1988)

13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Assisting/Useful books)

- 'Credit creation and Credit Controls' Vishnu Thankachan आलेख.scribd
- बैंकों द्वारा साख निर्माण की सीमाएँ, hindilibrary.com

13.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Long Answer Questions)

1. साख शब्द का अर्थ समझाइए और आधुनिक व्यापार में इसके महत्त्व को समझाइए।
2. विभिन्न प्रकार के साख पत्रों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
3. बैंकों द्वारा किस प्रकार साख निर्माण किया जाता है? उनकी क्या सीमायें है?
4. साख की मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए ।
5. केन्द्रीय बैंक की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक साख नियंत्रण विधियों का वर्णन कीजिए।

इकाई 14 : मुद्रा पूर्ति के अवयव
(UNIT 14 : COMPONENTS OF MONEY SUPPLY)

14.1 प्रस्तावना

14.2. उद्देश्य

14.3 मुद्रा पूर्ति की परिभाषा

14.4 मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाएं

14.4.1 परम्परावादी दृष्टिकोण

14.4.2 शिकागो या मौद्रिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण

14.4.3 गुर्ले तथा शॉ का दृष्टिकोण

14.4.4 केन्द्रीय बैंकिग या रैडक्लिफ दृष्टिकोण

14.5 भारत में मुद्रा पूर्ति के मापक

14.6 मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति

14.6.1 मुद्रा का प्रचलन वेग

14.6.2 मुद्रा का आय प्रचलन वेग

14.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व

14.7.1 आवश्यक रिर्जव अनुपात

14.7.2 बैंक कोषों का स्तर

14.7.3 जनता की करेन्सी तथा जमाएं रखने की इच्छा

14.7.4 उच्च शक्ति मुद्रा

14.7.5 अन्य कारक

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.10 सारांश

14.11 शब्दावली

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम मुद्रा की पूर्ति की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे क्योंकि इसका अध्ययन न महज मौद्रिक सिद्धान्त को समझने के लिये वरन् व्यवहारिक रूप में मौद्रिक नीति तथा कुशल मौद्रिक प्रबन्धन की नीति निर्धारित करने के लिये भी आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुये मुद्रा की पूर्ति में बैंक के महत्व का भी अवलोकन किया जायेगा। मुद्रा के रूप में प्रयोग किये जाने वाले साधनों में 'तरलता' का गुण होता है। विनिमय का माध्यम होने के कारण इसे तरल साधन की संज्ञा भी दी गयी है।

14.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे कि -

- ✓ मुद्रा की पूर्ति की परिभाषा क्या है?
- ✓ मुद्रा की पूर्ति की माप के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएं क्या है?
- ✓ मुद्रा पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक में क्या अन्तर है?
- ✓ मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से क्या तात्पर्य है?
- ✓ मुद्रा का प्रचलन वेग से क्या तात्पर्य है?
- ✓ मुद्रा की पूर्ति के निर्धारक तत्व क्या हैं?
- ✓ बैंक मुद्रा अथवा साख मुद्रा का निर्माण कैसे किया जाता है?
- ✓ भारत में मुद्रा के विभिन्न मापक क्या है?

14.3 मुद्रा पूर्ति की परिभाषा

मुद्रा की पूर्ति के अन्य पर्याय है - मुद्रा स्टॉक, मुद्रा का परिमाण आदि शब्द हैं। किसी भी समय पर मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है - अर्थव्यवस्था में विद्यमान मुद्रा का कुल परिमाण। सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की वह मात्रा है जिसे एक देश की जनता वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिये अपने पास रखती है।

14.4 मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाएं

मुद्रा की परिभाषा के सम्बन्ध में तीन भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं।

14.4.1 परम्परावादी दृष्टिकोण

प्रथम मत अत्यधिक प्रचलित मत माना जाता है जिसका सम्बन्ध परम्परागत एवं केन्द्रीय विचारधारा से है। इस मत के ही अनुसार मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है। अतः मुद्रा की पूर्ति से आशय उस करेन्सी से है जो जनता के पास तथा कामर्शियल बैकों में मांग जमा के रूप में विद्यमान है। इन्हें चलन मुद्रा भी कहते हैं। यह मुद्रा की पूर्ति की वैधानिक स्थिति है। इसके साथ ही बैकों की मांग जमाएँ चैक के माध्यम से ही चलन मुद्रा की भांति उपयोग में लायी जाती है। अतएव ये जमाएँ भी मुद्रा की कुल पूर्ति में सम्मिलित की जाती हैं।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + बैंकों की कुल जमा

Money Supply = Currency + Demand Deposit

परन्तु मौद्रिक नीति की दृष्टि से यह दृष्टिकोण बहुत संकुचित दृष्टिकोण है क्योंकि यह M मात्र विनिमय का माध्यम है।

14.4.2 शिकागो या मौद्रिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण

अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के महान अर्थशास्त्री फ्रीडमैन ने मुद्रा की कुल पूर्ति के सम्बन्ध में व्यापक विचारधारा का समर्थन किया। इसे मौद्रिक सम्प्रदाय भी कहते हैं।

मुद्रा की पूर्ति पर **फ्रीडमैन** ने प्रस्तुत परिभाषा दी *'शब्दशः वे डालर जिन्हें लोग अपनी जेबों में लिये घूमते हैं अथवा जो उनके खातों में बैकों में मांग जमा के रूप में और कामर्शियल बैकों के सावधि जमाओं के रू में भी विद्यमान है।"*

ऊपर दी गयी परिभाषा परम्परावादी परिभाषा से ज्यादा व्यापक है क्योंकि इसमें करेन्सी एवं मांग जमा के साथ-साथ सावधि जमा को भी सम्मिलित किया गया है।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी+ मांग जमा + सावधि जमा

Money Supply = Currency + Demand Deposit + Time Deposit

इसे भारत में M_3 से दर्शाया जाता है।

इस दृष्टिकोण को मौद्रिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त समझा जाता है परन्तु इसमें समय जमायें मुद्रा का पूर्ण तरल रूप नहीं हैं।

14.4.3 गुर्ले तथा शॉ का दृष्टिकोण

अपनी पुस्तक ***'Money in a journey of Finance'*** मुद्रा की पूर्ति का अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार मुद्रा की पूर्ति में उन सब वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए जो उसके निकट प्रतिस्थापन हैं। जैसे समय जमा, बचत बैंक जमा, साख पत्र, शेयर बांड आदि।

इस दृष्टिकोण के अनुसार

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + सावधि जमा + बचत बैंक जमा + बॉड्स + ...

Money supply = Currency + Demand Deposit + Time Deposit + Saving Bank + Share + Bonds +-----

इस दृष्टिकोण की यह कमी है कि ये न तो मुद्रा के विनिमय माध्यम का कार्य पूरा करता है और नही इतना विस्तृत क्षेत्र केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण में होता है।

14.4.4 केन्द्रीय बैंकिग या रैडक्लिफ दृष्टिकोण

मौद्रिक प्रणाली की परीक्षा हेतु नियुक्त 1959 में रेडक्लिफ समिति द्वारा प्रस्तुत रिर्पोट ने मुद्रा की पूर्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इस दृष्टिकोण के अनुसार *"मुद्रा से अभिप्राय विभिन्न साधनों द्वारा दी गयी साख है।" (Money is the credit extended by a wide variety of sources)*

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + समय जमा + बचत खाता जमा + शेयर + बॉड्स + प्रतिभूतियां + असंगठित क्षेत्र से साख।

Money supply = Currency + Demand deposit + Time deposits + Credit from unorganized sector.

उचित दृष्टिकोण:-

ऊपर दिये गये विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के पश्चात यह निकर्ष निकाला जा सकता है कि अत्यधिक विस्तृत क्षेत्र की अपेक्षा सामान्य रूप से करेन्सी तथा मांग जमा को ही शामिल तथा मांग पत्र

जमा को ही शामिल किया जाना चाहिए और बचतों तथा जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + सिक्के + नोट + मांग जमा

Money supply = Currency + Coins + Notes + Demand Deposits

14.5 भारत में मुद्रा पूर्ति के मापक

मुद्रा पूर्ति की द्वितीय कार्यकारी दल की सिफारिशों के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा की पूर्ति का आकलन चार संघटकों की सहायता से करता है-

M_1 = जनता के पास मुद्रा (करेन्सी नोट, सिक्के) + बैंक की मांग जमा, चालू तथा बचत बैंक खाते पर

M_2 = M_1 + डाकखाने की बचत बैंक जमा

M_3 = M_1 + बैंकों की सावधि जमा

M_4 = M_3 + डाकखानों की सम्पूर्ण जमा

M_1 से M_4 की ओर बढ़ने पर मुद्रा के इन चार रूपों की तरलता क्रमशः घटती जाती है।

14.6 मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जो किसी समय परिचलन में रहती है। मुद्रा की कुल पूर्ति को अपने कार्य अथवा प्रभाव के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा गया है। एक भाग वह जो केन्द्रीय सरकार के खजाने, केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्य बैंकों के पास ‘‘आधार’’ अथवा ‘‘आरक्षित मुद्रा’’ के रूप में रखा जाता है। यह परिचलन में प्रयुक्त नहीं किया जाता बल्कि कोषों में रखा जाता है। दूसरा भाग अधिक विस्तृत है जो परिचलन में रहता है। इसको विनिमय सम्बन्धी तथा अन्य भुगतानों के माध्यम के रूप में प्रयोग किये जाने के लिये जनता को उपलब्ध होती है।

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से आशय मुद्रा की कुल मात्रा के दूसरे भाग से है जो व्यय करने योग्य रूप में जनता को किसी समय प्राप्त होती है। मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्व के रूप में मुद्रा के प्रभावकारी पूर्ति ही अधिक महत्वपूर्ण होती है।

14.6.1 मुद्रा का प्रचलन वेग

मुद्रा स्टॉक होने के साथ-साथ उसका एक गुण यह भी है कि उसमें प्रवाह रहता है। मुद्रा की विभिन्न इकाईयां विनिमय की क्रिया में कई हाथों से बराबर गुजरती हैं और हर बार मुद्रा का कार्य करती हैं।

एक निश्चित अवधि में मुद्रा की एक इकाई औसतन जितने बार भुगतान करने के लिये प्रयोग की जाती है उसे मुद्रा का प्रचलन वेग कहते हैं।

किसी निश्चित अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = प्रचलन में मुद्रा की मात्रा ग मुद्रा का प्रचलन वेग।

मुद्रा के प्रचलन वेग को ज्ञात इस उदाहरण से किया जा सकता है - यदि एक निश्चित अवधि में एक रूपये का नोट एक के बाद दूसरे हाथों में जाता है और हर बार विनिमय माध्यम का कार्य करता है तो उसका प्रचलन वेग 10 हुआ, इस अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = 1 X 10 = 10 रूपये होगी।

14.6.2 मुद्रा का आय प्रचलन वेग

जब मुद्रा के प्रचलन वेग का राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्धित किया जाता है तो उसे मुद्रा का आय प्रचलन वेग कहा जाता है। ऐसे में मुद्रा के प्रयोग को केवल उन्हीं वस्तुओं व सेवाओं के क्रय-विक्रय में देखा जाता है जो किसी निश्चत अवधि में राष्ट्र की कुल वास्तविक आय में सम्मिलित होती है। मुद्रा का

आय प्रचलन वेग किसी वर्ष में मुद्रा की पूर्ति का उस वर्ष की राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। यह उस औसत संख्या को व्यक्त करता है, जितनी बार मुद्रा की इकाई एक निश्चित अवधि (एक वर्ष सामान्य रूप में) अंतिम आय-प्राप्तकर्ताओं के नकद शेषों में प्रविष्टि होती है अथवा इनसे बाहर निकलती है। इसे मुद्रा का चक्रीय प्रचलन वेग भी कहा गया है।

14.7 मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्व

मुद्रा पूर्ति के निर्धारण के संबंध में दो सिद्धान्त हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा पूर्ति को बैंक बहिर्जात रूप से निर्धारण करता है और दूसरे सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक क्रिया में होने वाले परिवर्तन अन्तर्जात रूप से मुद्रा पूर्ति को निर्धारित करते हैं जो लोगों की जमा की सापेक्षता में करेंसी धारण करने की इच्छा, ब्याज की दर इत्यादि को प्रभावित करती है।

अतः मुद्रा की पूर्ति निर्धारक बहिर्जात भी हैं और अन्तर्जात भी। यह प्रमुख निर्धारक तत्व निम्नलिखित हैं-

1. आवश्यक रिजर्व अनुपात।
2. बैंक कोषों का स्तर।
3. जनता की करेन्सी तथा जमाएं रखने की इच्छा
4. उच्च स्तरीय मुद्रा

14.7.1 आवश्यक रिर्जव अनुपात

यह मुद्रा पूर्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है।

1. चालू तथा सावधि जमा देयताओं से नकदी का अनुपात (RR) कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक बैंक को इन देयताओं का कुछ प्रतिशत देश के केन्द्रीय बैंक के पास जमा के रूप में रखना पड़ता है।
2. आवश्यक कोष अनुपात में वृद्धि होने पर व्यापारिक बैंकों के पास मुद्रा की पूर्ति घट जाती है और जब आवश्यक कोष अनुपात घट जाता है तो मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है।
3. भारत में मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिये कानून द्वारा एक अतिरिक्त कदम के रूप में वैधानिक रिजर्व अनुपात निश्चित किया गया है। यदि इसे बढ़ा दिया जाये तो इससे कामार्शियल बैंकों को उधार देने के लिये मुद्रा पूर्ति कम हो जाती है। यदि इसको कम कर दिया जाय तो बैकों को उधार देने के लिये मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है।

14.7.2 बैंक कोषों का स्तर

बैंक कोषों के अन्तर्गत दो तत्व सम्मिलित रहते हैं:-

1. व्यापारिक बैंक की केन्द्रीय बैंक के पास जमायें।
2. व्यापारिक बैंकों की तिजोरियों में विद्यमान करेन्सी, नोट अथवा नकदी। इसे तरल कोषानुपात भी कहते हैं।

किसी देश का केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए व्यापारिक बैंक की कोषों या तरल कोषानुपात को प्रभावित करते हैं। केन्द्रीय बैंक सभी व्यापारिक बैंकों के लिए यह आवश्यक कर देता है कि वे अपनी सावधि एवं मांग जमाओं दोनो का एक निश्चित प्रतिशत भाग आरक्षित के रूप में रखें। यही कानूनी, न्यूनतम अथवा आवश्यक रिर्जव है।

आवश्यक रिजर्व अनुपात (RR) एवं जमाओं के स्तर (D) द्वारा आवश्यक रिजर्व निर्धारित होते हैं।

$$RRr = RR \times D$$

रिजर्व जितना अधिक होगा बैंक को उतने ही अधिक आवश्यक रिजर्व रखना होगा। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिये अतिरिक्त रिजर्व ही अधिक महत्वपूर्ण है।

ER = TR-RR (अतिरिक्त रिजर्व = कुल रिजर्व - आवश्यक रिजर्व)

व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व ही उसकी जमा देयताओं के आकार को प्रभावित करते हैं। बैंक अपने अतिरिक्त रिर्व के बराबर ही कर्ज देते हैं और अतिरिक्त रिजर्व मुद्रा पूर्ति का आवश्यक अंग है। किसी व्यापारिक बैंक की मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिये केन्द्रीय बैंक खुले बाजार परिचालन और बट्टा दर नीति अपनाकर उसके रिजर्वों को प्रभावित करता है।

व्यापारिक बैकों की आरक्षतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव केवल तभी पड़ता है जब खुले बाजार परिचालन तथा बट्टा दर नीति एक दूसरे के पूरक हों।

14.7.3 जनता की करेन्सी तथा जमाएं रखने की इच्छा

यदि लोगों की यह आदत बनी हुयी है कि वे अधिक जमा करते हैं एवं कम नकदी अपने पास रखते हैं तो मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हो जायेगी। कारण यह है कि अधिक जमा का प्रयोग मुद्रा के निर्माण में प्रयुक्त हो जाता है। परन्तु यदि लोगों में बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति नहीं है तो वे अपनी बचतों को अपने पास ही नकदी के रूप में रखना उचित समझते हैं तो बैकों द्वारा साख निर्माण अपेक्षाकृत कम होगा और मुद्रा की पूर्ति का स्तर भी नीचे होगा।

14.7.4 उच्च शक्ति मुद्रा

उच्च शक्ति मुद्रा वह मुद्रा है जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षितों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है।

$$H = C + RR + ER$$

H = उच्च शक्ति मुद्रा

C = करेंसी

RR = आवश्यक रिजर्व

ER = अतिरिक्त रिजर्व

उच्च शक्ति मुद्रा बैंक जमाओं के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। यह बैक जमा के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। मुद्रा पूर्ति मौद्रिक आधार में परिवर्तन के साथ प्रत्यक्ष रूप से और करेन्सी और रिजर्व अनुपातों के साथ विपरीत परिवर्तित होती है।

14.7.5 अन्य कारक

मुद्रा पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित केवल उच्चस्तरीय मुद्रा का ही फलन नहीं है, बल्कि ब्याज दरों, आय और अन्य कारकों का भी फलन है। व्यावसायिक क्रिया में परिवर्तन जनता और बैंकों के व्यवहार को परिवर्तित कर सकते हैं। अतः मुद्रापूर्ति केवल बहिर्जात नियंत्रण मद ही नहीं बल्कि अंतर्जात निर्धारित मद भी है।

मुद्रा पूर्ति एवं बैंक साख एक दूसरे के साथ परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। जब मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है तो उसका एक भाग जमाकर्ता की बचत प्रवृत्ति पर निर्भर करते हुये बैंकों में जमा कर दिया जाता है। यही बचतें बैकों की जमाएं बन जाती हैं। इसे आगे कानूनी रिजर्व आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उधार देने में प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार मुद्रा पूर्ति में प्रत्येक वृद्धि के साथ बैंक साख बढ़ती है।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा स्टॉक में अंतर क्या है ?
2. मुद्रा की पूर्ति की माप के सम्बन्ध में विभिन्न अवधारणाओं के नाम बताइये।
3. संकुचित मुद्रा कौन सी होती है।
4. भारत की किस कार्यकारी दल ने मुद्रा पूर्ति के चार संघटक बताये हैं ?
5. विस्तृत मुद्रा कौन सी होती है।
6. मुद्रा पूर्ति के चार निर्धारक तत्व कौन कौन से हैं।

14.10 सारांश

मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की वह मात्रा है जिसे एक देश की जनता वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिये अपने पास रखती है। मुद्रा की पूर्ति से आशय उस करेन्सी से है जो जनता के पास तथा कामर्शियल बैकों में मांग जमा के रूप में विद्यमान है। सामान्य रूप से मुद्रा की पूर्ति से आशय करेन्सी तथा मांग जमा को ही शामिल तथा मांग पत्र जमा को ही शामिल किया जाना चाहिए और बचतों तथा जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जो किसी समय परिचलन में रहती है।

मुद्रा की कुल पूर्ति को अपने कार्य अथवा प्रभाव के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा गया है। एक भाग वह जो केन्द्रीय सरकार के खजाने, केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्य बैंकों के पास "आधार" अथवा "आरक्षित मुद्रा" के रूप में रखा जाता है। मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से आशय मुद्रा की कुल मात्रा के दूसरे भाग से है जो व्यय करने योग्य रूप में जनता को किसी समय प्राप्त होती है। मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्व के रूप में मुद्रा के प्रभावकारी पूर्ति ही अधिक महत्वपूर्ण होती है।

मुद्रा स्टॉक होने के साथ-साथ उसका एक गुण यह भी है कि उसमें प्रवाह रहता है। मुद्रा की विभिन्न इकाइंया विनिमय की क्रिया में कई हाथों से बराबर गुजरती हैं और हर बार मुद्रा का कार्य करती हैं। जब मुद्रा के प्रचलन वेग का राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्धित किया जाता है तो उसे मुद्रा का आय प्रचलन वेग कहा जाता है।

आवश्यक रिर्जव अनुपात मुद्रा पूर्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। किसी देश का केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए व्यापारिक बैंक की कोषों या तरल कोषानुपात को प्रभावित करते हैं । व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व ही उसकी जमा देयताओं के आकार को प्रभावित करते हैं। बैंक अपने अतिरिक्त रिर्व के बराबर ही कर्ज देते हैं और अतिरिक्त रिजर्व मुद्रा पूर्ति का आवश्यक अंग है।यदि लोगों में बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति नहीं है तो वे अपनी बचतों को अपने पास ही नकदी के रूप में रखना उचित समझते हैं तो बैकों द्वारा साख निर्माण अपेक्षाकृत कम होगा और मुद्रा की पूर्ति का स्तर भी नीचे होगा।

उच्च शक्ति मुद्रा वह मुद्रा है जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षितों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है। व्यावसायिक क्रिया में परिवर्तन जनता और बैंकों के व्यवहार को परिवर्तित कर सकते हैं। अतः मुद्रापूर्ति केवल बहिर्जात नियंत्रण मद ही नहीं बल्कि अंतर्जात निर्धारित मद भी है।

14.11 शब्दावली

- न देने योग्य मुद्रा
- मौद्रिक सम्प्रदाय- अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री मौद्रिक सम्प्रदाय के कहे जाते हैं।
- सावधि जमा - काल जमा
- वैधानिक नकद अनुपात
- उच्च शक्ति मुद्रा

- कुल मौद्रिक संसाधन

14.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-

14.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिहाई, जी. सी., जे पी मिश्रा एव के. पुल गुप्ता: अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- सेठी, टी. टी.: मुद्रा बैकिंग एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
- झिंगन, एम. एल. समष्टि अर्थशास्त्र, वृंदा प्रकाशक, नई दिल्ली।

14.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Mithani, D.M.(2008) International Economics, Himalaya Publishing House.
- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo
- Agrawal, Deepak (2009), Money Banking, Public Finance & International Economics, Himalaya Publishing House.

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रा पूर्ति के विभिन्न अवयवों की व्याख्या कीजिए ?
2. मुद्रा पूर्ति के निर्धारकों की विवेचना कीजिये ?
3. भारत में मुद्रा पूर्ति के विभिन्न कार्यों की व्याख्या कीजिए ?